प्रेरणा भरे पावन प्रसंग

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट
शांतिकुंज, हरिद्वार

चतुर्थ बार 2002 [मूल्य : 13·00 रुपये

दो शब्द

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं, जब वह किसी सत्य सिद्धांत अथवा सत्य कर्म का अनुभव करता है। अधिकांश व्यक्ति इस संसार को एक प्रपंच कहते हैं, माया का खेल बतलाते हैं और इन्हीं बातों की ओट में प्रायः अपनी बहुत-सी त्रुटियों, अनैतिक कार्यों को क्षम्य समझ लेते हैं। वे कहते हैं कि इस संघर्षमय और आपाधापी से भरी दुनिया में रहकर मनुष्य सदैव सत्य, न्याय, समानता का व्यवहार नहीं कर सकता। जो लोग विद्या और बुद्धि की दृष्टि से प्रसिद्ध हैं और धर्म, नीति, दर्शनशास्त्र के सिद्धांतों के भी ज्ञाता हैं, वे भी व्यवहार में प्रायः अनुचित मार्ग का अवलंबन करते हैं, स्वार्थ के लिए परमार्थ की तरफ से आँखें फेर लेते हैं और जब कोई उनके गलत कार्यों पर आक्षेप करता है, तो यही बहाना पेश करते हैं कि आजकल की दुनिया में चालाकी, तिकड़म और असत्य के बिना काम ही नहीं चल सकता।

पर महान् पुरुषों का मार्ग इससे भिन्न होता है। वे अपने सामने एक ऊँचा आदर्श रखते हैं और उसके लिए आवश्यकता होने पर स्वार्थ का बलिदान करने को भी तैयार रहते हैं। यही कारण है कि वे जो बातें कहते हैं या कार्य करते हैं, उनमें अनेक बार उनके मुँह से ऐसे उद्‍गार प्रकट हो जाते हैं, जो अन्य लोगों के लिए बड़े प्रेरणास्पद होते हैं। देखने अथवा सुनने में वे सामान्य ही जान पड़ते हैं, पर उनमें कोई ऐसा सत्य तथ्य निहित रहता है कि बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी हम उनको याद करते और उनसे उत्तम प्रेरणा ग्रहण करते रहते हैं।

यह नहीं समझना चाहिए कि ऐसे क्षण सामान्य लोगों के जीवन में नहीं आते अथवा वे कभी सत्य के दर्शन नहीं करते।

नहीं, ऐसे प्रसंग छोटे-बड़े सभी लोगों के जीवन में समय-समय पर आते रहते हैं। पर उनकी निगाह दूरगामी नहीं होती, इसलिए ऐसे अवसरों और घटनाओं के महत्त्व को वे न तो समझ पाते हैं और न सांसारिक लाभों के मुकाबले में उनको अधिक महत्त्व देने को तैयार होते हैं। परिणाम यह होता है कि जहाँ महान् पुरुषों की अनुभूतियाँ बहुत समय तक सर्वसाधारण के लिए प्रकाशदायक बनी रहती हैं, वहाँ अन्य लोगों के अनुभव और विचार क्षण स्थायी होते हैं और पानी के बुलबुलों की तरह बनते-बिगड़ते रहते हैं।

इस पुस्तक में देश और विदेशों के महामानवों तथा मनीषियों के जीवन की जो घटनाएँ और महत्त्वपूर्ण अवसरों पर प्रकट होने वाले उद्‌गार दिए गए हैं, वे मानव मात्र के लिए मार्गदर्शक हैं। यद्यपि ये प्रसंग ज्यादा बड़े नहीं हैं और उनमें सन्निहित उद्‌गार तो दस-बीस शब्दों के ही हैं, पर वे ऐसे चुटीले हैं जो तुरंत ही हृदय में स्थान कर लेते हैं। वैसे तो ये प्रत्येक व्यक्ति के लिए पठनीय हैं, पर नवयुवकों के लिए इनमें जो अमूल्य मार्गदर्शन मिल सकता है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती। जीवन की कठिन परिस्थितियों अथवा दुविधापूर्ण अवसरों पर मनुष्य का उचित कर्तव्य क्या है ? इसका जो ज्ञान इन छोटे-छोटे "प्रसंगों" से प्राप्त हो सकता है, वह अनेक बड़ी पुस्तकों में भी नहीं मिलता। आशा है, पाठक इसे ध्यानपूर्वक पढ़कर अवश्य लाभान्वित होंगे।

—प्रकाशक

प्रेरणा भरे पावन प्रसंग

श्रद्धया सत्यमाप्यते

माँ ने कहा—"बच्चे, अब तुम समझदार हो गए हो। स्नान कर लिया करो और प्रतिदिन तुलसी के इस वृक्ष में जल भी चढ़ाया करो। तुलसी की उपासना की हमारी परंपरा पुरखों से चली आ रही है।"

बच्चे ने तर्क किया—"माँ तुम कितनी भोली हो ? इतना भी नहीं जानती कि यह तो पेड़ है ? पेड़ों की भी कहीं पूजा की जाती है ? इसमें समय व्यर्थ खोने से क्या लाभ ?"

लाभ है मुन्ने ! श्रद्धा कभी निरर्थक नहीं जाती। हमारे जीवन में जो विकास और बौद्धिकता है, उसका आधार श्रद्धा ही है। श्रद्धा छोटी उपासना से विकसित होती है और अंत में जीवन को महान् बना देती है, इसलिए यह भाव भी निर्मूल नहीं।

तब से विनोबा भावे जी ने प्रतिदिन तुलसी को जल देना प्रारंभ कर दिया। माँ की शिक्षा कितनी सत्य निकली, उसका प्रमाण अब सबके सामने है।

स्वर्ग प्राप्ति का राजमार्ग

एक दिन एक गृहस्थ ने महात्मा रामानुज से प्रश्न किया कि "महात्मन् ! क्या ऐसा कोई मार्ग नहीं है कि यह संसार भी न छोड़ना पड़े और स्वर्ग भी पा लूँ।"

रामानुज हँसे और बोले—"हाँ, है ऐसा मार्ग। तुम जो कुछ कमाओ, ईमानदारी से कमाओ और जो कुछ व्यय करो—सदा दूसरों की भलाई के लिए करो।"

गृहस्थ को संदेह हुआ उसने पूछा—"मगर ऐसे कठिन मार्ग पर कौन चल सकता है ?" रामानुज ने दृढ़ विश्वास के साथ कहा—"जो नारकीय यातनाओं से बचना चाहता होगा और जिसे ईश्वर प्राप्ति की सच्ची लगन होगी।"

सबसे बढ़कर पूजा

लोकमान्य तिलक कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए लखनऊ आए। लखनऊ कांग्रेस में कार्यक्रम अत्यंत व्यस्त था, क्योंकि इसके दौरान विभिन्न दलों और गुटों में एकता स्थापित करने के लिए बातचीत हुई थी। अधिवेशन में एक दिन लोकमान्य बहुत तड़के से व्यस्त रहे और दोपहर तक एक क्षण के लिए भी अवकाश न पा सके। बड़ी कठिनाई से उन्हें भोजन के लिए उठाया जा सका। भोजन के समय परोसने वाले स्वयंसेवक ने कहा—"महाराज ! आज तो आपको बिना पूजा किए ही भोजन करना पड़ा।" लोकमान्य गंभीर हो गए। बोले—"अभी तक जो हम कर रहे थे, क्या वह पूजा नहीं थी ? क्या घंटी-शंख बजाना और चंदन घिसना ही पूजा है ? समाज-सेवा से बढ़कर और कौन-सी पूजा हो सकती है ?"

घोषणा पत्र

सिख संप्रदाय के चौथे गुरु श्री रामदास जी के अनेक शिष्य थे। सभी की अपनी-अपनी विशेषताएँ थीं। उनमें से एक शिष्य ऐसे थे, जिनकी विशेषता श्रद्धा और आज्ञापालन ही थी। इनका नाम था—अर्जुनदेव।

अर्जुनदेव ने दीक्षा लेकर आश्रम में प्रवेश किया, तो उन्हें बर्तन माँजने का काम सौंपा गया। वे सबेरे से शाम तक बर्तन माँजने में लगे रहते। अन्य शिष्य जबकि धर्म चर्चा और गुरु पूजा में लगते, तब भी अर्जुनदेव अपने नियत कर्म के अतिरिक्त दूसरी बात न सोचते। बर्तन माँजना ही उनके लिए सबसे बड़ी साधना बना हुआ था। गुरु ने यही तो आदेश उन्हें दिया था।

गुरुजी के अवसान का समय आया। सब शिष्य यह आशा लगाए हुए थे कि बढ़ी-चढ़ी योग्यता के कारण उन्हें ही उत्तराधिकार मिलेगा, वे गुरु की गद्दी पर बैठेंगे। गुरुदेव अपना घोषणापत्र लिख चुके थे। उनकी मृत्यु के बाद ही उसे खोला जाना था।

समय आया। गुरुदेव दिवंगत हुए। घोषणापत्र खुला। उसमें अर्जुनदेव को उत्तराधिकारी माना गया था। सुनने वालों ने आश्चर्य किया कि इस सबसे कम योग्य को यह पद कैसे मिला ? समाधान करने वालों ने समझाया कि श्रद्धा और अनुशासन—यही शिष्य की सबसे बड़ी योग्यता है। गुरुदेव की परख ठीक ही थी और निर्णय भी ठीक ही है।

अर्जुनदेव सिख धर्म के पाँचवें गुरु हुए, उन्होंने अपनी योग्यता के बल पर नहीं, श्रद्धा के बल पर सिख धर्म की भारी सेवा की और प्रगति की।

मानव जाति—एकात्मा

चीन में उन दिनों कुछ थोड़े-से शहरों को छोड़कर शेष स्थानों पर विदेशियों के प्रवेश पर रोक लगा दी गई थी। कभी भूल से कोई विदेशी वहाँ पहुँच जाता तो चीनी मरने-मारने को उतारू हो जाते, उनकी जान संकट में पड़ जाती।

एक बार स्वामी विवेकानंद चीन भ्रमण पर गए। उनकी किसी गाँव के भ्रमण की इच्छा हुई। दो जर्मन पर्यटकों की भी इच्छा वहाँ का ग्राम्य जीवन देखने की थी, पर साहस के अभाव में उनकी प्रवेश की हिम्मत नहीं हो रही थी। उन्होंने यह बात स्वामी जी से कही तो स्वामी जी ने कहा—"सारी मनुष्य जाति एक है। हमें विश्वास है कि यदि हम सच्चे हृदय से वहाँ के लोगों से मिलने चलें, तो वे लोग हमें मारने की अपेक्षा प्रेम से ही मिलेंगे।"

वे जर्मन पर्यटकों को लेकर गाँव की ओर चल पड़े। दुभाषिया उसके लिए तैयार नहीं हो रहा था, पर जब स्वामी जी नहीं रुके, तो वह भी साथ चला तो गया, पर अंत तक उसे यही भय बना रहा कि कहीं ये लोग उन्हें मारें नहीं।

गाँव वाले विदेशियों को देखकर लाठी लेकर मारने दौड़े। स्वामी विवेकानंद ने उनकी ओर स्नेह पूर्ण दृष्टि डालते हुए

कहा—"क्या आप लोग अपने भाइयों से प्रेम नहीं करते ?" दुभाषियों ने यही प्रश्न उनकी भाषा में ग्रामीणों से पूछा—तो वे बेचारे बड़े लज्जित हुए और लाठी फेंककर स्वामी जी के स्वागत सत्कार में जुट गए। यह देखकर जर्मन बोले—"सच है, यदि आप जैसा निश्छल प्रेम सारे संसार के लोगों में हो जाए, तो धरती पर कहीं भी कष्ट और कलह न रह जाए।"

शत्रु वह जो जी दुखाए

एक बार शेख सादी के पास एक व्यक्ति गया और कहने लगा—"आपका अमुक शत्रु आपकी बुराई कर रहा था और आपको तरह-तरह की गालियाँ बक रहा था।"

'सो तो मैं भी जानता हूँ!' थोड़ा रुककर शेख सादी बोले—"भाई शत्रु तो कहलाता वही है, जिससे बैर-विरोध हो। पर कम से कम इतना तो है कि वह मुँह के सामने कुछ नहीं कहता। आप तो मेरे सामने ही बुराई कर रहे हैं, अब आप ही बताइए कि मेरा शत्रु कौन है ? अच्छा होता, आपने मेरा जी न दुखाया होता और चुपचाप ही बने रहते।" बुराई करने वाला व्यक्ति बहुत लज्जित हुआ और वहाँ से उठकर चला गया। उस दिन से उसने कभी किसी की बुराई नहीं की।

पंडित नेहरू का वजन

एक बाल सम्मेलन के अवसर पर पंडित नेहरू बालक-बालिकाओं के बीच प्रश्नोत्तर का आनंद ले रहे थे। तभी एक बालिका ने प्रश्न किया—

"क्या आपने कभी अपना वजन भी लिया है ?" पंडित नेहरू ने तुरंत उत्तर दिया—"अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखने के कारण मैंने अनेक बार वजन लिया।"

बालिका ने फिर प्रश्न किया—"अच्छा बताइए, आपका सबसे ज्यादा और सबसे कम वजन कब और कितना था ?"

नेहरू ने बिना रुके कहा—"मेरा सबसे ज्यादा एक सौ बासठ पौंड उस समय था जब मैं अहमदनगर जेल में था और सबसे कम साढ़े सात पौंड वजन जब मैं पैदा हुआ तब था।"

बालिका ने ताज्जुब से पूछा—"जेल में तो वजन कम हो जाना चाहिए परंतु बढ़ कैसे गया ?"

पंडित नेहरू ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"उस समय मेरा वजन इस खुशी में बढ़ गया कि मैं अपने देश की सेवा में जेल का कष्ट सहन कर रहा हूँ।"

मैं तो बापू का चपरासी हूँ

बिहार के चंपारन जिले में महात्मा गाँधी का शिविर लगा था। किसानों पर होने वाले सरकारी अत्याचारों की जाँच चल रही थी। हजारों की तादाद में किसान आ-आकर बापू से अपने दुःख निवेदन कर रहे थे। उस समय उस जाँच आंदोलन मे कृपलानी जी का बड़ा प्रमुख सहयोग था।

वे गाँधी जी के कैंप सेक्रेटरी के रूप में काम कर रहे थे। इसलिए जिला अधिकारियों की आँख की किरकिरी बने हुए थे।

इस जाँच-पड़ताल के दौरान महात्मा जी को अनेक चिट्ठियाँ दिन में बहुत बार कलेक्टर के पास भेजनी पड़ती थीं। यह सब डाक ले जाने का काम कृपलानी जी ही करते थे।

कृपलानी जी को डाक लाते-ले जाते देखकर एक बार कलेक्टर ने पूछा आप ही तो वह प्रो० कृपलानी हैं, जो इस सब हलचल के मुखिया हैं। फिर आप यह डाक का काम क्यों करते हैं ?

कृपलानी जी ने उत्तर दिया, "मैं तो एक साधारण कार्यकर्त्ता और बापू का चपरासी हूँ।"

कृपलानी जी का उत्तर सुनकर कलेक्टर ने महात्मा गाँधी की महानता को समझा और आंदोलन की गरिमा का अंदाज लगा लिया।

सच्चे अतिथि

महाराष्ट्र के संत श्री एकनाथ जी को छह मसखरे युवक सदा तंग किया करते थे। एक बार एक भूखा ब्राह्मण उस गाँव में आया और भोजन की याचना की। गाँव के उन्हीं दुष्ट-जनों ने उससे कहा कि "यदि तुम संत एकनाथ को क्रोधित कर दो, तो हम तुम्हें दो सौ रुपए देंगे। हम तो हार चुके शरारत कर-करके पर उन्हें क्रोध आता ही नहीं।" दरिद्र ब्राह्मण भला कब मौका चूकने वाला था। फौरन उनके घर गया, वहाँ वे न मिले तो मंदिर में जा पहुँचा, जहाँ पर वे ध्यान-मग्न बैठे थे। वह जाकर उनके कंधे पर चढ़कर बैठ गया। संत ने नेत्र खोले और शांत मुद्रा में बोले—"ब्राह्मण देवता ! अतिथि तो मेरे यहाँ नित्य ही आते हैं, किंतु आप जैसा स्नेह आज तक किसी ने नहीं जताया। अब तो आपको मैं बिना भोजन किए वापिस नहीं जाने दूँगा।"

ईश्वर नहीं तो उसकी सृष्टि को पूजो

एक बार साधु ने आकर गाँधी जी से पूछा—"हम ईश्वर को पहचानते नहीं, फिर उसकी सेवा किस प्रकार कर सकते हैं ?" गाँधी जी ने उत्तर दिया—"ईश्वर को नहीं पहचानते तो क्या हुआ, उसकी सृष्टि को तो जानते हैं। ईश्वर की सृष्टि की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।"

साधु की शंका का समाधान न हुआ, वह बोला—"ईश्वर की तो बहुत बड़ी सृष्टि है, इस सबकी सेवा हम एक साथ कैसे कर सकते हैं ? " ईश्वर की सृष्टि के जिस भाग से हम भली-भाँति परिचित हैं और हमारे अधिक निकट है, उसकी सेवा तो कर ही सकते हैं। हम सेवा कार्य अपने पड़ोसी से प्रारंभ करें। अपने आँगन को साफ करते समय यह भी ध्यान रखें कि पड़ोसी का भी आँगन साफ रहे। यदि इतना कर लें तो वही बहुत है।" गाँधी जी ने गंभीरतापूर्वक समझाया। साधु उससे बहुत प्रभावित हुए।

उम्र बढ़ी तो काम बढ़ा

प्रेसीडेंट लिंकन के एक मित्र ने कहा—"आप काफी वृद्ध हो गए हैं, अब काम के घंटे कुछ कम कर देना चाहिए।"

लिंकन हँसे और बोले—"श्रीमान् जी ! इस परिपक्व अवस्था से बढ़िया काम करने का और कौन-सा समय होगा।" यह कहकर उन्होंने अपने सेक्रेटरी से कहकर काम के घंटों में १ घंटे की और वृद्धि कर दी।

नारियों का साहस

बात स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों की है, कांग्रेस ने देशवासियों से गाँधी दिवस मनाने और तिलक स्वराज फंड के लिए चंदा जमा करने की अपील की। लाहौर में पुलिस का कड़ा प्रबंध था, अतः कोई व्यक्ति जब हिम्मत न कर सका, तब वहाँ महिलाओं ने सभा की, भाषण दिए, खद्दर बेचा और चंदा इकट्ठा किया, यह देखकर सारा लाहौर गाँधी दिवस मनाने उमड़ पड़ा।

काम छोटा रहा पर हृदय नहीं

इग्लैंड की कॉमन्स सभा में वाद-विवाद चल रहा था। एक सदस्य ने अपने विरोधी से कहा—"महाशय ! उन दिनों को भूल गए। जब आप जूतों पर पालिश किया करते थे।" उस सदस्य ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया—"महोदय ! मेरा काम छोटा रहा है, हृदय नहीं। मेरी पालिश भी ईमानदारी के साथ की जाती थी, किसी को असंतुष्ट नहीं किया।" विरोधी सदस्य इस नम्रतापूर्वक उत्तर से बड़े लज्जित हुए और अनुभव किया कि श्रेष्ठता का आधार उच्चाधिकार नहीं वरन् सदाचार है।

शिक्षा का समय

एक महिला शिकागो के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री फ्रांसिस वेलैंड पार्कर से यह पूछने गई कि वह अपने बच्चों की शिक्षा कब से प्रारंभ करे ? पार्कर ने पूछा आपका बच्चा कब जन्म लेगा ? महिला ने कहा—"वह तो पाँच वर्ष का हो गया।" इस

पर पार्कर ने कहा—"मैडम ! अब पूछने से क्या फायदा ? शिक्षा का सर्वोत्तम समय तो पाँच वर्ष तक ही होता है, सो आपने यों ही गँवा दिया।"

मनुष्य की शक्ति बड़ी है—या बीमारी की

कलकत्ता में प्लेग फैला था। स्वामी विवेकानंद जी सारी साधना-उपासना छोड़कर पीड़ितों की सेवा के लिए कलकत्ते चल पड़े, एक भक्त ने उन्हें रोकते हुए कहा—"आपको कुछ हो गया तो ?" स्वामी जी बीच में ही बोल पड़े—"चलो देखें तो, मनुष्य की शक्ति बड़ी होती है या बीमारी की।"

निंदा की चिंता

एक बार एक व्यक्ति ने स्वामी दयानंद से पूछा कि—"बहुत-से व्यक्ति आपकी निंदा करते हैं, इन्हें कैसे रोका जाए ?"

स्वामी जी ने कहा—"निंदा से तो ईश्वर भी नहीं बच सका, फिर हमारी तो बात ही क्या है ? यदि मनुष्य अपनी आत्मा के सामने सच्चा है, तो उसे सारी दुनिया की परवाह न करनी चाहिए।"

भीख लेना अपमान

एक हाथ, एक पाँव से अपंग एक लड़का रेल के डिब्बे में घुसा, एक सज्जन ने दयाभाव दिखाते हुए एक रुपया देना चाहा, तो उस बच्चे ने कहा—"श्रीमान् जी ! भगवान् के दिए १२ अंगों में दो खराब हैं।" मूँगफली बेचकर उद्योग करने वाला यही लड़का ब्रिसबेन का महान् उद्योगपति हुआ।

वीर-प्रसविनी वीर-माता

चित्तौड़ के राजकुमार अरिसिंह एक सुअर का पीछा कर रहे थे, सुअर एक खेत में घुस गया, जिसकी एक किसान बालिका रखवाली कर रही थी। बालिका ने कहा—"खबरदार घोड़े वाले शिकारी ! खेत में घुसकर फसल बर्बाद न करना। मैं खुद सुअर को निकाले देती हूँ।" वीर बालिका मोटा डंडा लेकर खेत में घुसी

और डंडे से ही सुअर को मार डाला। राजकुमार युवती की वीरता पर मुग्ध हो गए, उसी से विवाह कर लिया। वीर हम्मीरदेव इसी बालिका की संतान थे।

परोपकार के लिए स्वयं संकट में

स्वामी विवेकानंद उन दिनों इंग्लैंड में थे। एक दिन वे अपने कुछ मित्रों के साथ देहात का भ्रमण करने गए, तब अचानक एक बलिष्ठ साँड़ उधर से ही दौड़ता आ निकला। उसे आता देख उनके साथ के लोग घबड़ाकर इधर-उधर भागने लगे। इस भगदड़ में एक छोटी-सी लड़की टक्कर खाकर नीचे गिर गई। वह साँड़ उस बालिका की ओर ही आ रहा था। स्वामीजी यह देखकर सावधान हो गए और दौड़कर साँड़ के सामने डट गए। साँड़ एकदम रुक गया और दूसरी ओर चल दिया। बच्ची के बचाव के लिए अपने को खतरे में डालने वाले स्वामी जी का यह साहस देखकर उनके सब साथी चकित रह गए।

प्रिय-रस

प्रसिद्ध गुजराती कवि कलापी से एक बार एक शिक्षित व्यक्ति ने पूछा—"श्रृंगार, करुण, वीर आदि में से कौन-सा रस आपको अधिक प्रिय है ?" समाज के लिए हितकर हो, मुझे वही रस प्रिय है, चाहे वह करुण रस हो या वीर रस। 'कवि कलापी' ने उत्तर दिया।

किसी ने बताया नहीं

मालोद ताल्लुका (गुज०) के एक गाँव में लगभग ५० गाँवों के भीलों को एकत्र कर उन्हें बताया गया कि शराब पीना पाप है। भीलों को इस बात का आश्चर्य हुआ कि उन्हें ऊँची जाति वालों ने यह पहले क्यों नहीं बताया ? उन्होंने आजीवन शराब न पीने की प्रतिज्ञा की और ६४ वर्ष बीत गए आज भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हैं।

अपना मुँह गंदा क्यों करूँ ?

पं० मदनमोहन मालवीय बंबई में ठहरे हुए थे। रात्रि के समय बंबई के प्रसिद्ध विद्वान् पं० रमापति मिश्र उनसे मिलने के लिए आए। मिश्र जी बोले—"मालवीय जी ! मैंने तो अपने में काफी सहनशीलता बढ़ा ली है। आप चाहें तो सौ गाली देकर देख लीजिए, मुझे क्रोध नहीं आएगा।" मालवीय जी हँसते हुए बोले—"मिश्र जी ! आपकी बात तो ठीक है, पर क्रोध की परीक्षा तो सौ गाली देने के बाद होगी। उससे पूर्व ही पहली गाली में मेरा मुँह गंदा हो जाएगा।" मालवीय जी के इस उत्तर को सुनकर मिश्र जी नत-मस्तक हो गए।

सेवा की साध

देशबंधु चित्तरंजनदास के दादा जगबंधुदास एक परोपकारी पुरुष थे। थके-माँदे मुसाफिरों के लिए उन्होंने अपने गाँव में एक धर्मशाला बनवा रखी थी। उनके हृदय में सभी प्रकार के दुखिया मनुष्यों के प्रति सहानुभूति थी। एक दिन पालकी में बैठकर वे गाँव जा रहे थे। रास्ते में गर्मी से बेहाल और चलने में असमर्थ एक ब्राह्मण उन्हें दिखाई पड़ा। जगबंधुदास स्वयं पालकी से उतर गए और उस ब्राह्मण को पालकी में बैठाकर गाँव पहुँचाया।

पुत्री नहीं भानजी

हरिनारायण आप्टे बड़े उदार थे। उनकी भोजन बनाने वाली की पाँच-छह वर्ष की पुत्री का उनसे बड़ा स्नेह था। भोजन वे उसी के साथ करते थे। एक बार आप्टेजी के घर एक मेहमान आया। बच्ची को आप्टेजी के साथ भोजन करते देख उसने कहा—"प्रतीत होता है, यह आपकी प्रथम पत्नी की सुपुत्री है।" आप्टेजी ने जवाब दिया—"पुत्री नहीं, यह मेरी भानजी है।"

जंगल का फूल

एक दिन पं० जवाहरलाल नेहरू जी ने शास्त्री को जंगल का फूल कह दिया। शास्त्री जी ने उत्तर दिया—"पंडित जी, जंगल में जो आज़ादी और स्वच्छता है, वह बगीचे में कहाँ ?"

लेकिन पूजा में प्रयुक्त होते हैं बगीचे के फूल, देवों के शीश चढ़ते हैं बगीचे के फूल—पंडित जी ने तर्क दिया।

स्वाभाविक हास-परिहास में शास्त्री जी ने उत्तर दिया—"देवता के सिर पर चढ़ने की अपेक्षा, क्या विश्व-कल्याण के लिए सुगंध बिखेरना कम है। फूल देवताओं के लिए ही क्यों खिले, क्या दूसरे जीव तुच्छ हैं ?"

प्यास वहीं बुझाना

गुरु गोविंदसिंह ने अपने १६ वर्षीय बड़े पुत्र अजीतसिंह को आज्ञा दी कि तलवार लो और युद्ध में जाओ। पिता की आज्ञा पाकर अजीतसिंह युद्ध में कूद पड़ा और वहीं काम आया। इसके बाद गुरु ने अपने द्वितीय पुत्र जोझारसिंह को वही आज्ञा दी। पुत्र ने इतना ही कहा—"पिता जी प्यास लगी है, पानी पी लूँ।" इस पर पिता ने कहा, "तुम्हारे भाई के पास खून की नदियाँ बह रही हैं। वहीं प्यास बुझा लेना।" जोझारसिंह उसी समय युद्ध क्षेत्र को चल दिया और वह अपने भाई का बदला लेते हुए मारा गया।

मेड इन हांगकांग

खेड़ा (गुजरात) की बात है; एक जापानी व्यापारी किसी खरीद के लिए आए थे, एक दिन जब वह सज्जन हिसाब लिख रहे थे, तो उनकी पैंसिल टूट गई। पास ही खड़े एक भारतीय महोदय ने उन्हें दूसरी पैंसिल दे दी। जापानी भाई ने पैंसिल ले तो ली, पर लिखने की अपेक्षा उसके अक्षर पढ़ने लगे, लिखा था—"मेड इन हांगकांग।" उस पैंसिल को लौटाते हुए उन्होंने कहा—"नहीं भाई ! यह जापान की बनी नहीं है" और आगे का हिसाब उन्होंने तभी लिखा, जब बाजार से दूसरी "मेड इन जापान" पैंसिल आई।

उनके इस देश-प्रेम से भारतीय बहुत प्रभावित हुए।

यहाँ धन गड़ा है

मृत्यु के समय बेबीलोन की रानी नोटीक्रिस ने अपनी कब्र पर निम्न पंक्तियाँ लिखने का संकेत किया—"यहाँ पर अपार धन गड़ा हुआ है. कोई भी निर्धन और अशक्त मनुष्य कब्र खोदकर धन प्राप्त कर सकता है।"

बहुत लंबे समय के पश्चात् ईरान के बादशाह डेरियस ने जब बेबीलोन को जीत लिया, तो उसने कब्र खोदने का कार्य आरंभ किया, पर उसे एक भी पैसा नहीं मिला, केवल एक पत्थर मिला, जिस पर लिखा हुआ था—'तू मनुष्य नहीं है, नहीं तो मरे हुए को नहीं सताता।'

निःस्वार्थ निष्काम

निःस्वार्थ समाज सेवा का दम भरने वाले एक अथकथरे समाजसेवी अपना बड़प्पन प्रदर्शित कर रहे थे—"मैं समाज के लिए सब कुछ करके भी प्रतिदान में कुछ नहीं चाहता, यश भी नहीं ?"

उनके वक्तव्य के बाद उनके सामने एक पर्चा आया। उस पर लिखा था "यह वक्तव्य देने में क्या आपका यश भाव नहीं है, कि लोग आपकी निःस्वार्थ सेवा भावना का लोहा मान जायें ?"

इस पर उन सज्जन को कुछ बोलते न बना।

मानवता की माँग

स्व० लाल बहादुर शास्त्री जब केंद्रीय गृह-मंत्री थे, तब उनकी कोठी ऐसी थी जिसके दो दरवाजे थे; एक जनपथ रोड की ओर था दूसरा अकबर रोड की ओर।

एक दिन सिर पर लकड़ी के बोझ रखे कुछ मजदूर स्त्रियाँ इधर आईं और चक्कर से बचने के लिए शास्त्री जी के बँगले में घुस पड़ीं।

उन्हें देखा तो चौकीदार बिगड़ खड़ा हुआ। वह उन्हें वापस लौटाने लगा, तो शास्त्री जी आ गए। स्थिति समझते देर न लगी।

चौकीदार को शांत करते हुए उन्होंने कहा—"देखो, इनके सर पर कितना बोझ है, यदि इन्हें यहाँ से निकल जाने में थोड़ी राहत होती है, तो तुम इन्हें क्यों रोकते हो ?"

स्वर्ग नरक के बीच

मरणासन्न डार्विन को थोड़ा होश हो गया। उन्होंने अपनी पुत्री से कहा—"बेटी, मैं न स्वर्ग जाना चाहता हूँ, न नरक। मैं तो यदि परलोक कहीं होता होगा, तो उसके द्वार पर अड़ा रहूँगा और इन पंडितों को न स्वर्ग में प्रवेश करने दूँगा और न नरक में। अन्यथा ये इस लोक की तरह परलोक में भी पाखंड फैलाए बिना न मानेंगे।"

भीख नहीं चाहिए

दया भाव दिखाते हुए एक सज्जन ने एक डालर का सिक्का बच्चे के हाथ में रखा और कहा—"जाओ बेटे कुछ खाकर अपनी भूख मिटा लो।"

सिक्का लौटाते हुए बच्चे ने स्वाभिमानपूर्वक कहा—"साहब ! मैं भीख माँगने नहीं आया, आपसे विनय करने आया हूँ कि मुझे किसी स्कूल में भरती करा दो, जहाँ मैं पढ़ सकूँ।"

उन सज्जन ने बच्चे से प्रभावित होकर उसे एक स्कूल में दाखिल करा दिया। दोनों पाँवों का लँगड़ा यह लड़का ही एक दिन कुशल हवाबाज सैंडर्स के नाम से विख्यात हुआ।

दृष्टिकोण

एक दार्शनिक से पूछा गया—"आप इस दुःखी और असंतुष्ट संसार के बीच सुखी और संतुष्ट कैसे रहते हैं ?" उन्होंने उत्तर दिया—"मैं अपनी आँखों का सही उपयोग जानता हूँ। जब मैं ऊपर देखता हूँ, तो मुझे स्वर्ग याद आता है, जहाँ मुझे जाना है। नीचे देखता हूँ तो यह सोचता हूँ कि जब मेरी कब्र बनेगी, तो कितनी कम जगह लगेगी और जब मैं दुनिया में चारों तरफ देखता हूँ, तो

मुझे मालूम होता है कि करोड़ों मनुष्य ऐसे हैं, जो मुझसे भी दुखी हैं। इसी तरह मैं संतोष पाता हूँ।"

छाता है, किस काम के लिए ?

कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था और वर्षा की झड़ी लगी थी। एक-एक करके नेता लोग निकले चले जा रहे थे; एक कोने में खड़े श्री व्यंकटेशनारायण तिवारी वर्षा रुकने की प्रतीक्षा में थे, अनेक नेता छाता लगाए हुए, उनके सामने से गुजरे और सभी ने केवल एक बात पूछी—'क्यों व्यंकटेश छाता नहीं लाए ?" अंत में आए महामना मालवीय, सिमटे खड़े तिवारी को देखते हुए बोले—"अरे, व्यंकटेश, तुम यहाँ खड़े हो, आओ छाते में हो लो।"

महामना ने उन्हें खींचकर अपने छाते में ले ही लिया और बोले—"आखिर यह छाता है, किस काम के लिए ?"

राजनीति में भी सच्चाई

एक दिन ब्रजमोहन व्यास ने मदनमोहन मालवीय से राजनीति के संबंध में कहा कि, महाकवि माघ ने तो अपने एक ही छंद में राजनीति की व्याख्या कर दी है। उस छंद में उन्होंने कहा है कि अपना उदय और शत्रु का विनाश ही केवल राजनीति है। मालवीय जी की मुस्कान घृणा में बदल गई। बोले—'छि: ! यह तो टुच्ची राजनीति है; सच्ची श्लाघनीय राजनीति तो वह है, जिसमें अपने साथ-साथ दूसरों का भी अभ्युदय होता है।"

धन नहीं, मानव

पं० मोतीलाल अपने पीछे धन नहीं, एक मानव छोड़ना चाहते थे और उन्होंने वैसा ही किया भी।

यह सुनने पर कि मोतीलाल जी अपने लड़के जवाहरलाल को शिक्षा के लिए विदेश भेजना चाहते हैं, मोतीलाल के समकालीन तथा इलाहाबाद के प्रसिद्ध वकील श्री सुंदरलाल ने उनसे

पूछा—"विदेश में जवाहरलाल की शिक्षा पर कितना व्यय होगा ?" मोतीलाल जी ने कहा—"अनुमानतः एक लाख रुपए।"

श्री सुंदरलाल ने सोचा कि यह धन का अपव्यय है। उन्होंने मोतीलाल जी से कहा कि अगर आप यह राशि सुरक्षित रख दें, तो जवाहरलाल के जीवन भर काम आएगी।

मोतीलाल जी ने तुरंत उत्तर दिया कि "मैं अपने पीछे धन नहीं, एक मानव छोड़ना चाहता हूँ।"

धुआँ किसका

राजेंद्र बाबू अपने गाँव जीराबाई जा रहे थे। नौका में एक मुसाफिर ने सिगरेट सुलगाई। सिगरेट के धुँए से देश-रत्न की खाँसी उभर आई। जब गंध असह्य हो उठी, तो उन्होंने मुसाफिर से पूछा—"यह सिगरेट आपकी ही है न ?" उत्तर मिला—मेरी नहीं तो क्या आपकी है।" देश-रत्न ने कहा—"तो यह धुँआ भी आपका ही हुआ। इसे अपने पास न रखकर दूसरों पर क्यों फेंकते हो ?" मुसाफिर ने लजाकर सिगरेट फेंक दी।

असहायों के दो सहायक विलियम बूथ और एबेपियरे

न जाने यह मनुष्य की कौन-सी दुर्बलता है कि वह अपने किसी पीड़ित बंधु को देखकर संवेदना के साथ सहायता के लिए दौड़ नहीं पड़ता। आज यदि एक मनुष्य दूसरे के दुःख में हाथ बँटाने लगे, तो संसार से दुःख-दर्द को भागते देर न लगे। न जाने मनुष्य में यह सद्बुद्धि कब आएगी ? फिर भी इस ओर से निराश होने की तब तक आवश्यकता नहीं है, जब तक इस धरती पर विलियम बूथ और एबेपियरे जैसे जनसेवा का मार्ग दिखलाने और प्रेरणा देने वाले आविर्भूत होते रहें।

एक समय ऐसा भी रहा है, जब इंग्लैंड और फ्रांस के लंदन व पेरिस जैसे नगरों की गली-कूँचों और फुटपाथों पर हजारों अनाथ बच्चे और रोगी-दोषी स्त्री-पुरुष भूखे-प्यासे पड़े हुए पशुओं की तरह जीते और उन्हीं की तरह मरा करते थे।

उन अभागों को एक टूक रोटी और दो चुल्लू पानी देने वाला तो दूर, मनुष्यतापूर्ण दृष्टिकोण से भी देखने वाला कोई नहीं था। रोगी मरते, बच्चे रिरियाते, स्त्रियाँ व्यभिचार करतीं और पुरुष चोरी, उठाईगिरी और राहजनी करते, किंतु फिर भी पेट की ज्वाला शांत न हो पाती।

असहायों के नारकीय जीवन से उपजी बीमारियों और कुप्रवृत्तियों व अन्य विवादों का नागरिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता था, किंतु फिर भी कोई इस ओर ध्यान न देता था। किसी को यह सोचने-समझने की फुरसत न थी कि आखिर ये मनुष्य हैं, इनके सुधार-सहायता के लिए हमारा भी कुछ दायित्व है।

इंग्लैंड के विलियम बूथ और फ्रांस के एवेपियरे नामक दो मानव महात्माओं की दृष्टि अपने-अपने देश के इस कलंक पर पड़ी और उन्होंने मानव-मानव का ईश्वरीय संबंध मानकर इन अभागों का उद्धार किया।

निहत्था घूमने वाला

देश विभाजन के समय ऐसा लगा मानो लोगों के हृदय भी विभाजित हो गए हैं। सांप्रदायिक दंगे अपनी चरम सीमा पर पहुँच गए। एक जाति दूसरी जाति को खाने के लिए तैयार हो गई। प्राणों का कोई मूल्य न रह गया। उस समय दिल्ली में दंगों का केंद्र बना हुआ था। हर गली, सड़क पर लाशों के ढेर लगे थे। मकानों में आग लगाई जा रही थी। दुकानें लुट रही थीं। कुछ लोग एक जूते की दुकान में घुस गए। देखते ही देखते वह दुकानदार तो प्राण बचाकर अलग भागा।

गुंडे जूते ले-लेकर इधर-उधर दौड़ने लगे। एक दबंग, निहत्था आदमी अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहने हुए दनदनाता हुआ दुकान में घुस आया। उसे देखते ही लोग जहाँ के तहाँ खड़े रह गए। हाथ फिर जूतों के जोड़ों को न उठा सके। फिर भी एक धृष्ट आदमी जूते लेकर भाग खड़ा होता है। वह व्यक्ति अपने

सामने दुकान लुटते कैसे देख सकता था। उसने दौड़कर जो ललकार लगाई कि वह जूते वहीं छोड़ जान बचाकर भागा। फिर तो उस सफेद पोश व्यक्ति ने बिखरे हुए जूते उठाकर दुकान में रखे।

यह दबंग व्यक्तित्व और किसी पुरुष का नहीं वरन् जवाहरलाल नेहरू का था, जो सांप्रदायिक दंगों की लपटों के बीच भी अकेले घूम रहे थे।

धैर्य का संबल

एक युवक ने रूसी लेखक ताल्स्ताय से पूछा, "आपकी सफलता का रहस्य क्या है ?"

"बेटे ! इस रहस्य का नाम है—धैर्य।" ताल्स्ताय ने मुस्कराते हुए कहा। "संसार में कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसे पूरा न किया जा सकता हो, बशर्ते कि करने वाले में धैर्य हो।"

युवक ने कहा, "लेकिन एक काम ऐसा भी है, जो बहुत धैर्य रखने के बावजूद नहीं किया जा सकता।"

"वह क्या ?" "छलनी में पानी भरना।"

"ओह ! इसमें क्या बड़ी बात है।" ताल्स्ताय ने मुस्कराते हुए कहा। "इसे भी किया जा सकता है, बशर्ते कि पानी के जमने तक कोई धैर्य रख सके।"

भगवान् अवतार न लेंगे

जालंधर में तुलसी जयंती के अवसर पर महाकवि को श्रद्धांजलि देते हुए पंजाब के राज्यपाल श्री गाडगिल ने रहस्योद्घाटन किया कि अब भगवान् ने निश्चय किया है कि वे अवतार धारण नहीं करेंगे, क्योंकि इतने अवतार होने के बाद भी संसार की स्थिति में कुछ अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। अब भगवान् प्रतिभाशाली साहित्यकारों और कवियों के रूप में संसार के सम्मुख प्रकट होंगे।

लीजिए दो पैसे

राथचाइल्ड के पास एक दिन उनके एक कम्युनिस्ट मित्र पहुँचकर बोले—"मिस्टर राथचाइल्ड, आपने इतना धन एकत्रित कर लिया है; यह अन्याय है, इस पर आपका ही नहीं, संसार का अधिकार है।"

राथचाइल्ड ने कहा—"सो तो है" और फिर एक पर्चे में कुछ गुणा भाग करने लगे। फिर जेब से दो सिक्के निकालकर मित्र महोदय को देते हुए बोले—"लीजिए और जो कोई आता जाएगा, उसे दो-दो पैसे देता जाऊँगा। मेरी कमाई इतनी ही है कि सारे मनुष्यों को दो-दो पैसे बाँट सकूँ।"

इस डिब्बे का क्या होगा

गाँधी जी कश्मीर जा रहे थे। थर्ड क्लास के जिस डिब्बे में वे यात्रा कर रहे थे, उसमें वर्षा का बहुत-सा जल भर जाने से डिब्बा गीला हो गया था।

गार्ड ने यह देखा तो गाँधी जी से जाकर कहा—"आप डिब्बा बदल लें, आपके लिए अन्यत्र व्यवस्था कर देते हैं।"

"फिर इस डिब्बे का क्या होगा", गाँधी जी ने पूछा, तो गार्ड ने बताया—"इसमें दूसरे यात्रियों को बैठा दिया जाएगा।"

"अपने आराम के लिए दूसरों को यहाँ बैठाने की बात सोचना भी मेरे लिए कठिन है।" यह कहकर गाँधी जी ने डिब्बा बदलने से इनकार कर दिया।

गुरु—आप

प्रयाग में द्विवेदी मेले की चहल-पहल थी। यहाँ सर गंगानाथ झा की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। जैसे ही द्विवेदी मंच पर आए कि सर गंगानाथ उनके चरण स्पर्श करने के लिए झुके। उसी क्षण द्विवेदी जी ने भी सर गंगानाथ के चरण छूने का प्रयास किया। द्विवेदी जी बोले—"आप मेरे गुरु हैं। आपने मुझे संस्कृत लिखना सिखाया है, अतः मुझे चरण स्पर्श का अवसर

दीजिए।" सर गंगानाथ बोले—"नहीं, आप मेरे गुरु हैं, क्योंकि मुझे हिंदी लिखना तो आपने ही सिखाया था।"

ब्रह्म-राक्षस

कंयनी नरेश की राजकुमारी प्रेत बाधा से पीड़ित हुई। भूत सामान्य नहीं, ब्रह्म राक्षस था। तब श्री रामानुजाचार्य बुलाए गए। उन्होंने वहाँ जाकर पूछा—"आपको यह योनि क्यों कर मिली ?" रोकर ब्रह्मराक्षस बोला—"मैं विद्वान् था, किंतु मैंने अपनी विद्या छिपा रखी। किसी को भी मैंने विद्या दान नहीं किया, इससे ब्रह्म-राक्षस हुआ। आप समर्थ हैं, मुझे इस प्रेतत्व से मुक्ति दिलाइए।" श्री रामानुज ने राजकुमारी के मस्तक पर हाथ रखकर जैसे ही भगवान् का स्मरण किया, वैसे ही ब्रह्म राक्षस ने उसे छोड़ दिया, क्योंकि वह स्वयं प्रेतयोनि से मुक्त हो गया। उस दिन से श्री रामानुज ने प्रतिज्ञा की कि वह भी स्वाध्याय का लाभ अपने समाज को भी देते रहेंगे।

मंगल मिलन

"आज फाँसी लगने वाली है।" भगतसिंह ने विचार किया इससे अच्छा दिन कौन-सा आएगा। आज तो किसी महापुरुष का दर्शन करना चाहिए। कहाँ, जेल में ? नहीं, वहाँ कहाँ संभव ? "वसीयत के बहाने मुझे लेनिन की जीवनी दे जाना" कारागार के भीतर सरदार भगतसिंह ने अपने वकील के पास खबर भेज दी। वकील ने वह पुस्तक भगतसिंह को पहुँचा दी। उधर फाँसी की तैयारी होने लगी, इधर भगतसिंह लेनिन का जीवन वृत्तांत पढ़ने में निमग्न हो गए।

जेल अधिकारी उन्हें फाँसी के लिए लेने आए, उस समय वे अंतिम अध्याय पढ़ रहे थे। उन्होंने अपना ध्यान पन्नों में रखे हुए हाथ उठाकर कहा—"महाशय, अभी ठहरिए, एक क्रांतिकारी दूसरे क्रांतिकारी से मिल रहा है।" अधिकारी स्तब्ध रह गए, मौत के सन्नाटे में भी जीवन की निश्चलता। जहाँ थे, वहीं रुक गए। पुस्तक

का अंतिम अध्याय समाप्त कर हर्ष से उछलते भगतसिंह उठ खड़े हुए और फाँसी के लिए झूमते हुए चल पड़े। फाँसी के फंदे में झूमने तक वीरवर भगतसिंह का मनोबल आकाश की भाँति ऊँचा ही उठा रहा।

मेरा सर्वोपरि उपहार

आइजन हावर अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गए थे। इस उपलक्ष्य में उन्हें देश-भर से लाखों उपहार मिले। इन उपहारों में एक मामूली झाड़ू भी थी। भेजने वाले ने लिखा था, "आपने अपने भाषण में कहा था कि यदि मैं चुन गया, तो मेरा काम राज्यतंत्र में व्याप्त गंदगी को साफ करना होगा। मुझे विश्वास है कि मेरा यह नन्हा-सा उपहार आपको सदा आपके उस वचन की याद दिलाता रहेगा।" इन उपहारों की प्रदर्शिनी का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति ने उस झाड़ू को ऊँचा उठाते हुए कहा—"यह है मेरा सर्वोत्तम उपहार ! इसमें देश की आत्मा ने मुझसे सीधी बात-चीत की है।"

शरीर श्रम की अनिवार्यता

बापू दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे, तो उन्होंने अपनी सारी संपत्ति छोड़ दी, क्योंकि वह पहले ही अपनी संपत्ति को सार्वजनिक उपयोग के लिए दान देने का व्रत ले चुके थे। अपने संबंधियों को बुलाकर उन्होंने लिखा-पढ़ी कर दी और अपने चारों पुत्रों के हस्ताक्षर भी करवा दिए। अब तो बापू पूर्ण अकिंचन बन चुके थे।

अब समस्या तो गोकी बहन की थी। जो उनके आश्रित थीं और वैधव्य का जीवन जी रही थीं। दुर्भाग्य की बात कि उनकी एक ही पुत्री थी, वह भी बेचारी विधवा थी। दोनों की उदरपूर्ति के लिए कुछ तो सहायता आवश्यक ही थी। उन्होंने बापू को पत्र लिखा, "अब खर्च में वृद्धि हो जाने के कारण उसकी पूर्ति हेतु हमें

पड़ोसियों का अनाज पीसना पड़ता है, यदि आप कोई उपाय बताएँ तो बड़ी कृपा हो।"

बापू ने तुरंत ही पत्रोत्तर दिया—"अनाज पीसकर जीविका चलाना हर दृष्टि से अच्छा है। इससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है, इसे तो सभी जानते हैं। हम भी यहाँ अनाज पीसते हैं। यदि इच्छा हो तो तुम दोनों भी यहाँ आ सकती हो। हम सब मिलकर एक-से रहेंगे। मेरी तरफ से जन-सेवा का तुम्हें भी पूर्ण अधिकार है। मुझसे किसी दूसरे प्रबंध की आशा करना व्यर्थ होगा।" कायिक श्रम की अनिवार्यता और उत्कृष्ट अपरिग्रह एवं संबंधियों के व्यामोह से निवृत्ति का यह उत्कट आदर्श था।

सेवा के लिए छोटे बनो

महात्मा गाँधी जी से प्रथम भेंट करने के लिए दो साधु आश्रम में आए। उन्होंने गाँधी जी से प्रथम भेंट में ही कहा—"बापूजी हम सेवा के लिए आए हैं, हमें कोई काम दीजिए।"

बापू ने उन्हें अतिथि के रूप में रखा और अगले दिन काम देने को कहकर उन्हें विदा किया। दोनों ने रात मजे में अतिथि गृह में बिताई।

प्रातःकाल एक हाथ में बाल्टी और झाड़ू लिए बापूजी ने उनका दरवाजा खटखटाया। साधु बाहर आए और काम पूछा। बापू ने कहा—आइए हमारे साथ। आज हम तीनों की आश्रम की टट्टियाँ और गुसलखाने साफ करने की बारी है। यह सुनते ही दोनों साधु भौंचक्के से खड़े हो गए। उनसे कोई उत्तर देते न बन रहा था।

गाँधी जी ने कहा—"भाइयों ! क्या सोचते हो ? क्या तुम इसे घृणित समझते हो ? सेवा के लिए हर छोटे से छोटा कार्य बड़ा होता है। यदि गंदगी धोना घृणित होता, तो माताओं को श्रद्धा की दृष्टि से कौन देखता; जो छोटे से छोटा काम भी प्रेम

और भावना के साथ कर सकता है, वही तो सच्चा सेवक और सुधारक है।

साधु चुपचाप खिसक लिए। उस दिन सफाई का काम अकेले बापू ने किया। यह कार्य आश्रमवासियों के लिए एक आदर्श बन गया।

आप मेरी माँ हैं

छत्रसाल अपनी प्रजा की देखभाल बच्चों की तरह करते थे। वह समय-समय पर अपने राज्य का दौरा करते और जन-संपर्क द्वारा उनसे कठिनाइयाँ पूछते रहते थे। एक बार उनके स्वस्थ और सुंदर शरीर को देखकर एक युवती उनकी ओर आकर्षित हुई। कामातुरता के सम्मुख भय और लज्जा कैसी !

वह युवती महाराज के पास आई और मौका देखकर बोली, "राजन् ! आप जैसे दयालु राजा के राज्य में भी मैं दुःखी रहती हूँ।"

राजा बड़े दुःखी हुए। वह सोचने लगे कि मेरे निरंतर प्रयत्नशील रहने पर भी राज्य के स्त्री-पुरुष दुःखी रहें, अभावग्रस्त रहें, फिर मेरे राज्य करने से भी क्या लाभ है ?

वह बोले, "देवी ! बताइए आपको क्या कष्ट है, मैं उसे दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न करूँगा।"

"राजन् ! ऐसी मीठी-मीठी आश्वासन भरी बातें कह तो सब देते हैं, पर करते विरले ही हैं। आप वचन दें तब तो मेरा बताना भी सार्थक है।"

उस महिला ने अपना पांसा फेंका। महाराज ठहरे सरल हृदय वाले और प्रजावत्सल, उन्होंने कहा, "देवी ! आपके दुःख दूर करने के लिए मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा।"

"बात बड़ी छोटी-सी है। मैं चाहती हूँ कि आप जैसी संतान मेरे भी हो।"

उसकी बात सुनकर कुछ क्षण के लिए महाराज छत्रसाल स्तब्ध रह गए, पर उन्होंने बड़ी विवेकशीलता तथा संयम से कार्य किया। वे उस कामातुर नारी के चरणों में मस्तक नवाकर बोले—"माताजी ! संभव है, आप जिस पुत्र को जन्म दें, वह मेरी तरह न हो, अतः आज से आप मुझे ही अपना पुत्र स्वीकार कर लीजिए।"

राजा की यह बात सुनते ही उस महिला का स्वप्न टूट गया, उसे अपनी त्रुटि का बोध हो गया। पर छत्रसाल अपने जीवन भर उसके प्रति श्रद्धा रखते रहे और राजमाता की तरह सम्मान प्रदान करते रहे।

समय को न बाँधो

घटना बगदाद की है। वहाँ के एक खलीफे ने, जो बादशाह भी होता था, अपना वेतन निश्चित कर रखा था। राज-काज और प्रजा की सेवा के एवज में वह राजकोष से प्रतिदिन संध्या समय तीन दिरम (उस जमाने का एक सिक्का) लिया करते थे। वह वेतन अन्य कर्मचारियों की तुलना में नगण्य था, लेकिन खलीफा इस अल्प आय में ही अपने सारे परिवार का पालन बहुत सादगी से किया करते थे। ईद का त्यौहार पास आ रहा था। बेगम ने उनसे प्रार्थना की—"जहाँपनाह ! यदि आप कृपा करके अपना तीन-चार दिन का वेतन पेशगी दे दें, तो मैं बच्चों के लिए नए कपड़े सिलवा दूँ। अबकी बार तो ईद पास ही आ रही है।"

बीबी की बात सुनकर खलीफा कुछ विचार करते रहे। फिर बोले—"मैं सोचता हूँ, यदि मैं तीन दिन जीवित न रहूँ, तो यह कर्ज कौन चुकाएगा ? इसलिए तुम खुदा से मेरी जिंदगी के आगे के तीन दिन का पट्टा ला दो तो मैं खुशी-खुशी उतने ही दिन का पेशगी वेतन खजाने से उठा लाऊँगा।" बेचारी बेगम इस पर क्या कहती ? पर अपने पति की कर्तव्य-परायणता की ज्योति में उसे राष्ट्र की नींव बहुत मजबूत नजर आ रही थी। आज देश में

बहुत-से लोग अधिक से अधिक हड़पने और कम से कम काम करने की इच्छा रखते हैं। काश ! खलीफा के उदाहरण से हम कुछ ले सकें।

मनुष्य-मनुष्य में भेद कैसा

संसार में अपरिमित ज्ञान भरा पड़ा है, पर उसे तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब अपना अहंकार मिटाकर शिष्य भाव लाया जाए, श्रद्धा और भावनापूर्वक ज्ञान पाने की पवित्रता व्यक्त की जाए—इसलिए हे वत्स ! आप शहंशाह अकबर से जाकर कहिए, वे जब तक बादशाह होने का घमंड परित्याग नहीं करते, तब तक अमरदास के दर्शन असंभव हैं।

अमरदास सिख संप्रदाय के तृतीय गुरु थे, उन्होंने अपने अनुयायियों को सामूहिक लंगर में भोजन कराने की प्रथा का सूत्रपात किया। उन दिनों हिंदुओं में ऊँच-नीच, बड़े-छोटे का भाव अत्यधिक विकृत रूप धारण कर चुका था। गुरु अमरदास की धारणा थी कि इस प्रथा से—मनुष्य-मनुष्य के बीच ऊँच-नीच की खाई पटेगी। इसलिए ही उन्होंने अपने अनुयायियों को इस प्रथा से बाँध दिया था।

उनकी विद्वता और गौरव से प्रभावित होकर एक दिन अकबर उनसे मिलने गया। अधिकारियों ने गुरु को सूचना दी—शहंशाह अकबर आपके दर्शन करना चाहते हैं और कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। अमरदास जी ने संदेशा भेजा कि यहाँ सब नागरिक समान हैं, एक ही ईश्वर के पुत्र भाई-भाई हैं। भाइयों-भाइयों में भेदभाव नहीं होता, अकबर यहाँ आ सकते हैं, पर एक शहंशाह की तरह नहीं, सामान्य नागरिक की तरह। यदि वे यहाँ आकर सब आश्रमवासियों के साथ बैठकर भोजन करने को तैयार हों, तो प्रसन्नतापूर्वक आ सकते हैं।

शहंशाह ने वैसा ही किया, तब कहीं गुरु के दर्शन पा सके।

संख्या नहीं, समर्थता जीतती है

"पांडव कुल पाँच हैं और कौरव सौ, आप युद्ध कराने जा रहे हैं या पांडवों का विनाश"—सहमे हुए मुनि उत्तंक ने कृष्ण से अपनी आशंका प्रकट की।

इस प्रकार कृष्ण ने उत्तर दिया—"महामुनि ! संख्या नहीं सामर्थ्य जीतती है। सूर्य अकेला ही वह काम कर देता है, जो सैकड़ों तारागण भी नहीं कर सकते।"

यह तो मेरा कर्तव्य था

सांप्रदायिक दंगे की आग पूरे जबलपुर में फैल चुकी थी, नगर में कर्फ्यू लगा था, जो केवल घंटे, दो घंटे को ही हटाया जाता था। उतनी देर में लोग आवश्यक कार्य कर लेते थे।

एक दिन ए० एच० खान अपने अतिथि को स्टेशन तक पहुँचाने गए, जब वह घर लौट रहे थे कि रास्ते में ही कर्फ्यू लग गया। अब घर तक पहुँचना भी आसान न था। सामने से पुलिस की मोटर आते देख खान साहब एक गली में घुस गए, पर वह गली नहीं, एक मकान का पिछला हिस्सा था।

खान साहब घबराए हुए तो वैसे ही थे, तब तक उन्हें आवाज सुनाई दी, "कौन है और बिना पूछे यहाँ कैसे घुस आया ?" अब तो उनकी बोलती बंद हो गई। हकलाते हुए बड़ी कठिनाई से कह पाए "मेरा नाम ए० एच० खरे है, थोड़ी देर बाद चला जाऊँगा।"

तब तक शाम हो गई, शुरू में कड़ककर पूछने वाले घर के मालिक ने बड़े स्नेह से कहा, "बेटा ! अब तो रात्रि हो गई, ऐसी स्थिति में घर जाना ठीक नहीं है, सुबह चले जाना।" खान साहब रुक तो गए पर उन्हें रात भर भय लगा रहा, कहीं यह लोग पहचानकर मुझे मार ही न डालें।

सुबह हुई घर के मालिक ने आकर कहा—"अब तुम घर जा सकते हो। मैं कल रात्रि को ही समझ गया था कि तुम मुसलमान

हो, इसीलिए मैंने तुम्हें रोक लिया था कि रास्ते में तुम पर कोई आक्रमण न कर दे।"

खान साहब मन ही मन उनका अहसान मानकर चरणों की ओर झुके ही थे कि उन्होंने उठाकर अपने गले से लगा लिया और कहा—"बेटा ! यह तो मेरा कर्तव्य था कि आपत्ति में फँसे किसी व्यक्ति की समय पर सहायता की जाए।"

लोहे के टोप में पानी

नादिरशाह करनाल के मैदान में मुहम्मदशाह की सेना को परास्त करके दिल्ली पहुँचे। वहाँ दोनों ही बादशाह एक ही सिंहासन पर आसीन हुए। नादिरशाह ने मुहम्मदशाह से पानी पीने की इच्छा व्यक्त की। मुगल बादशाहों के आडंबर से सभी परिचित हैं। माँगा पीने के लिए पानी था और वहाँ बजने लगा नगाड़ा, जैसे किसी उत्सव की शुरूआत होने जा रही हो।

दस-बारह सेवक उपस्थित हो गए। किसी के हाथ में रूमाल था तो किसी के हाथ में खासदान। दो-तीन सेवक चाँदी के बड़े थाल को लेकर आगे बढ़े, उसमें मानिक का कटोरा जल से भरा रखा था। ऊपर से दो सेवक कपड़े से उस परात को ढके हुए बराबर चल रहे थे। नादिर की समझ में यह नाटक न आया, वह घबरा गया, माँगा पानी था और यह क्या तमाशा होने जा रहा है। उसने पूछा यह सब क्या हो रहा है ? मुहम्मदशाह ने उत्तर दिया—"आपके लिए पानी लाया जा रहा है।" नादिर ने ऐसा पानी पीने से साफ इनकार कर दिया। उसने तुरंत अपने भिश्ती को आवाज लगाई। भिश्ती हाजिर हुआ, नादिर ने अपना लोहे का टोप उतारकर भिश्ती से पानी भरवाकर प्यास बुझाई। पानी पीने के बाद बड़े गंभीर स्वर में कहा—"यदि हम भी तुम्हारी तरह पानी पीते तो ईरान से भारत न आ पाते।"

सेवा ने बदला

यों तो ऐसा प्रतिदिन ही हुआ करता था, पर उस दिन मुंशीराम कुछ अधिक पी गए थे। कोतवाल के लड़के थे, अपार संपत्ति और पिता का प्रभाव—मुंशीराम को आवारागर्दी, वेश्यागमन, मांस, जुआ किसी में कोई रोक-टोक नहीं थी। शराब तो उनके लिए पानी हो गई थी।

नशे में धुत्त रात के दो बजे दरवाजा खटखटाया और पत्नी उपस्थित हुई। मुँह से तीव्र बदबू आ रही थी, पर उस नारी के लिए मानो वह दुर्गंध भी अमृत थी। जल्दी से पति को भीतर किया और दरवाजा बंद करने को हुई कि पति महोदय ने उल्टी कर दी। सारा शरीर भीग गया बदबू से भर गया, पर उस सेविका के लिए तब भी जैसे कुछ हुआ ही न हो। एक हाथ, हाथ में लेकर, दूसरे से पीठ को सहारा देकर, अपने शयन कक्ष में ले जाकर वस्त्र बदले, हाथ-मुँह धुलाया, भोजन कराया और आराम से लिटा दिया। अपने वस्त्र बदले और भूख-प्यास की चिंता किए बिना सेवा में फिर आ उपस्थित हुई। सिर और पाँव दाबते-दाबते सूर्य भगवान् निकल आए, तब मुंशीराम की नींद खुली पर उस बार नींद ऐसी खुली कि फिर मुंशीराम कभी सोए नहीं।

अर्थात् पत्नी की सेवा ने उन्हें ऐसा बदला कि कल तक शराब पीने वाला यही व्यक्ति महान् धार्मिक नेता बन गया। आज हम जिन्हें श्रद्धानंद कहते हैं, वह यही मुंशीराम थे। उनकी धर्मशील पत्नी ने उन्हें महान् बना दिया।

संकल्प की शक्ति

स्वतंत्रता संग्राम के अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल चौथी जमात में पढ़ते थे। कुसंगति में पड़कर बीड़ी और सिगरेट पीने लगे। इस बुरी लत के कारण उन्हें चोरी करने की आदत भी पड़ गई। मन कमजोर हो चला, शरीर भी गिरने लगा, कोई काम करने की हिम्मत न पड़ती। बिस्मिल हमेशा परेशान रहते।

एक दिन चोरी पकड़ी गई। माँ ने बहुत लताड़ा। रामप्रसाद ने अपने एक साथी को देखा, वह व्यायाम किया करते थे। नशा नहीं करते थे, उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था, उन्होंने उनसे पूछा भाई मैं भी अपना शरीर बनाना चाहता हूँ।

मित्र ने सलाह दी, आप भी व्यायाम किया कीजिए ? बिस्मिल ने पूछा—"लेकिन मैं तो दिन भर में ४०-५० सिगरेट पीता हूँ, वह कैसे छूटे ?"

मित्र ने कहा—"दोस्त अपने मन का संकल्प जगाओ। हिम्मत करके छोड़ दो, कुछ दिन की परेशानी के बाद फिर तो स्वास्थ्य है। बड़े आदमी बनना हो तो इतनी दृढ़ता तुम्हें अपने भीतर से जगानी ही पड़ेगी।"

रामप्रसाद जी ने प्रतिज्ञा लेकर सिगरेट पीना छोड़ दिया; फिर आजीवन उसे हाथ नहीं लगाया। उसी दिन से कसरत करना प्रारंभ कर दिया और यह नियम फाँसी के दो घंटे पूर्व तक जारी रखा। दृढ़ मनोबल और इस नियमितता के कारण ही उनका स्वास्थ्य बहुत सुंदर था। जिन्होंने उन्हें बाल्यावस्था में देखा था, वे उनके सुसंगठित शरीर को देखकर पहचान भी नहीं पाते थे।

स्वस्थ शरीर के कारण उनका मन प्रसन्न रहता था। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी वे घबराते न थे। मृत्यु के क्षणों में भी "शेर" गाने वाले शेर बिस्मिल में वह दिलेरी कहाँ से आती, यदि वे नशा और बीमारी, कमजोरी के ही चक्कर से न छूटते।

स्वावलंबन का पाठ

ईश्वरचंद विद्यासागर को इंग्लैंड में एक सभा की अध्यक्षता हेतु बुलाया गया। उनके दैनिक कार्य घड़ी की सुई के साथ-साथ पूर्ण होते थे। वह निश्चित समय पर सभा भवन में पहुँचे, तो देखा काफी लोग बरामदे में चहल-कदमी कर रहे हैं और कुछ लोग सभा भवन में एक ओर खड़े हैं। पूछने पर पता

लगा कि सफाई करने वाले कर्मचारी अब तक नहीं आए, इसलिए इस भवन की सफाई नहीं हो सकी है और न बैठक की व्यवस्था ही हो सकी।

विद्यासागर जी यह बात सहन न कर सके, उन्होंने ब्रुश उठाया और फर्श की सफाई करने लगे। फिर क्या था ? आगंतुकों ने भी देखा-देखी सफाई का कार्य शुरू कर दिया। कुछ लोगों से फर्नीचर जमाया। पंद्रह मिनट जब हुए तब सभी व्यक्तियों ने अपना स्थान ग्रहण कर लिया था।

उन्होंने अपने भाषण में प्रारंभ में ही कहा—"कोई व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र, उसे स्वावलंबी होना ही चाहिए। अभी आप सबने देखा कि दो, चार व्यक्तियों के कारण सभी को परेशानी उठानी पड़ रही थी। यह भी तो संभव है कि सफाई करने वाले कर्मचारियों तक ठीक समय पर सूचना न पहुँची हो अथवा वे किसी प्राकृतिक आपत्ति के कारण यहाँ तक आने में असमर्थ हों। ऐसी स्थिति में क्या आज का कार्यक्रम स्थगित कर दिया जाता ? कितने ही व्यक्तियों का आज का श्रम और समय व्यर्थ चला जाता। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि हम अपने कार्य स्वयं करें।

मनुष्य की पहचान

स्वामी विवेकानंद एक बार अमेरिका की एक सड़क से गुजर रहे थे। स्वामी जी गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए थे। उनकी विचित्र वेश-भूषा देखकर लोगों ने समझा, यह कोई मूर्ख है। उनकी पीछे हँसी-मजाक बनाती, करती हुई भीड़ चल पड़ी। स्वामी जी थोड़ा चलकर रुके और भीड़ की ओर देखते हुए बोले—"सज्जनों ! आपके देश में सभ्यता की कसौटी पोशाक है, पर मैं जिस देश से आया हूँ, वहाँ कपड़ों से नहीं, मनुष्य की पहचान उसके चरित्र से होती है।" स्वामी जी के तेजस्वी वचन सुनकर सारी भीड़ स्तब्ध रह गई। स्वामी जी सहज भाव से आगे बढ़ गए।

आत्महत्या पाप

महर्षि रमण के आश्रम के समीपवर्ती गाँव में एक अध्यापक रहते थे। एक बार अपने कौटुंबिक जीवन से वे अत्यधिक क्षुब्ध होकर आत्महत्या करने की बात सोचने लगे। किसी निर्णय पर पहुँचने से पहले उन्होंने महर्षि की सम्मति जाननी चाही। अतः एक दिन वे आश्रम पहुँचे। स्वामी जी आश्रमवासियों के भोजन के लिए पत्तलें बना रहे थे। स्वामी जी अध्यापक के आने का अभिप्राय समझ गए। अध्यापक महोदय उन्हें प्रणाम करते हुए बोले—"भगवन् ! आप इन पत्तलों को इतने परिश्रम के साथ बना रहे हो और आश्रमवासी इनमें खाना खाकर फेंक देंगे।" महर्षि मुस्कराते हुए बोले—"सो तो ठीक है, वस्तु का पूर्ण उपयोग हो जाने पर उसे फेंक देना बुरा नहीं, बुरा तो तब है, जब उसे अच्छी अवस्था में ही खराब करके फेंक दिया जाए।" अध्यापक स्वामी जी के अभिप्राय को समझ गए और आत्महत्या करने का इरादा छोड़ दिया।

विवाद समाप्त न हुआ

इंग्लैंड के लंकाशायर नगर में एक ऐसा गिरजाघर बनाने की बात सोची गई, जो विश्व में अद्वितीय हो। नगरपालिका के मेयर ने उसके लिए यथेष्ट धन दिया और गिरजाघर बनने लगा।

बहुत सुंदर गिरजाघर बनकर तैयार हो गया। दर्शक वाह-वाह कर उठते थे। दूर-दूर से भक्तगण दर्शनार्थ आने लगे। एक दिन नगरपालिका की बैठक बुलाई गई। यह प्रमाणित करना था कि गिरजाघर विश्व के सब गिरजाघरों से भव्य और सुंदर है। सभा प्रारंभ हुई, एक सदस्य ने उसे अनावश्यक लंबा बताया। दूसरे ने चौड़ाई की टीका की। किसी ने कहा गिरजाघर पूर्वी शैली पर होता तो और सुंदर होता।

बहस बराबर चलती रही पर कोई सर्वसम्मत निष्कर्ष नहीं निकला। एक दिन ईशरवुड वहाँ पहुँचे और बोले—"आप लोग इतने

महीनों से वाद-विवाद में लगे हो, समय बरबाद करते हो। तुमसे अच्छे तो यह भक्त ही हैं, जो जितना है, उतने का ही आनंद लूट रहे हैं।"

कहते हैं कि इस गिरजाघर का यह विवाद अभी तक समाप्त नहीं हुआ है।

पहली फसल के पहले फल

शासकीय सेवा से मुक्त होने के बाद श्री गीजूभाई त्रिवेदी अपने गाँव जा बसे। निजी मकान था, अतः किराए का कोई झंझट न था। फंड का पैसा मिला तो उन्होंने दो एकड़ जमीन खरीदकर उसमें कलमी आमों का बगीचा लगाया। कलमें दूर-दूर से मँगवाई गईं। तीन वर्ष तक कुशल और परिश्रमी मालियों की देख-रेख से वह बगीचा बढ़ता गया।

संकट का पहाड़ टूटते क्या देर लगती है, अचानक त्रिवेदी जी की ज्येष्ठ पुत्री विधवा हो गई। दामाद का निजी कारोबार बंबई में होने के कारण उन्हें अपना गाँव छोड़ना पड़ा। किसी भी बढ़ते हुए व्यापार को एकदम समाप्त करना तो संभव नहीं होता। पुत्री को आवश्यकता थी, किसी विश्वासपात्र सहायक की, सो पिता से बढ़कर इस विपत्ति काल में किसका संरक्षण मिल सकता था। उसने पिताजी से आग्रह किया, उनके बच्चे भी वहीं के विद्यालयों में पढ़ते थे। अतः पिताजी भी गाँव का मोह छोड़कर फिर बंबई पुत्री के पास चले गए। लगा लगाया बगीचा बेच दिया, जाते समय मन में केवल एक अतृप्त इच्छा बनी रही कि जो पौधे अपने हाथ से रोपे थे, उनके फल खाने को नहीं मिले।

सालभर हुआ होगा। एक दिन शाम को कार्यालय में एक सज्जन ने पत्र देते हुए कहा—जिन्होंने आपसे आम का बगीचा खरीदा था, उन सामलदास शाह का मैं भाई हूँ। उन्होंने आम की दो टोकरियाँ आपके पास भेजी हैं।" त्रिवेदी जी ने पत्र पढ़ा, जिसमें लिखा था, इस वर्ष आम के बगीचे में पहली फसल आई है। अतः

पहली फसल के पहले फल आपकी सेवा में भेजते हुए हमें प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। कृपया स्वीकार कर आशीर्वाद दें। पत्रोत्तर मिलने पर ही आपके परिश्रम के प्रतीक इन मधुर फलों को हम लोग चखेंगे।

जब बगीचे की पूरी कीमत वह प्राप्त कर चुके थे, तो शाह दो टोकरे भरकर आम उन्हें भेजें, इसमें कोई औचित्य या अधिकार की बात नहीं थी; वरन् साँवलदास का भावपूर्ण सौजन्य था, जिसके कारण आमों की मिठास दुगुनी लग रही थी।

खतरनाक कौन है ?

दार्शनिक डायोनीज से एक दिन पूछा गया कि जानवरों में सबसे ज्यादा खतरनाक कौन होते हैं ? तो उन्होंने मनुष्य की ओर इशारा करते हुए कहा—"जंगलियों में निंदक और घरेलुओं में चापलूस।"

प्रसन्नता सर्वोपरि

छात्रों की एक सभा में प्रसिद्ध उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद का प्रवचन हो रहा था, वे हँसमुख स्वभाव के थे, भाषण में छात्रों को हँसाते जा रहे थे।

जब भाषण समाप्त हो गया, तो एक छात्र ने पूछा—"आपको सबसे अधिक पसंद क्या है ?" उत्तर देते हुए उन्होंने तपाक से कहा—"हँसी-खुशी का वातावरण। मुँह लटकाए रहने वाले मनहूसों के बीच में तो मेरा दम ही घुटने लगता है।"

नेता नहीं, मैं तो खिदमतगार हूँ

श्री रफी अहमद किदवई के पास कुछ सज्जन अपने किसी कार्यवश पहुँचे। सामान्य शिष्टाचार के पश्चात् उन्होंने पूछा—"कहिए, मैं क्या सेवा कर सकता हूँ आपकी ?"

आगंतुक बोले, "देखिए हमारा सम्मेलन निकट ही है और हमें अभी तक टेलीफोन नहीं मिला है, इससे बड़ी असुविधा है और हाँ, आने वाले की संख्या बहुत अधिक है। सो यदि आप ट्रेन में एक

विशेष बोगी और लगवा दें, तो बहुत सुविधा हो जाएगी और आप भी सम्मेलन में आने की अवश्य कृपा करेंगे।" टेलीफोन लग गया। नियत समय पर ट्रेन में विशेष बोगी की सुविधा भी मिल गई, किंतु तीसरी बात के उत्तर में उन्होंने कहा, "सम्मेलन वगैरह से तो मैं दूर ही रहता हूँ। मैं नेता नहीं हूँ। खिदमतगार हूँ। मुझे तो इसी काम के लिए रहने दीजिए।"

सच्ची देश भक्ति

अण्णा साहब जापान की यात्रा पर गए, तो अपने एक मित्र के लिए यहाँ से आम भी लेते गए। जापान पहुँचने पर फलों की टोकरी चुंगी अधिकारी ने यह जानना चाहा कि उसमें क्या है।

"इसमें भारत का सबसे मधुर फल आम है, यह मैं अपने एक मित्र के लिए लाया हूँ।" अण्णा साहब ने उत्तर दिया। चुंगी अधिकारी ने यह कहकर सारे आम जब्त कर लिए, ऐसे श्रेष्ठ फलों को खाकर जापानी इस बात का प्रयत्न करेंगे कि उन्हें यह फल पुनः खाने को मिलें। ऐसी स्थिति में वे भारत से मँगाने का प्रयत्न करेंगे और यहाँ का धन विदेश जाने लगेगा, जो उचित नहीं।

घृणा पाप से करो पापी से नहीं

स्वामी रामकृष्ण परमहंस की धर्मपत्नी शारदामणि माता काली का शृंगार अलंकार बड़े प्रेमपूर्वक करती थीं। इस कार्य में अन्य महिलाएँ भी सहायता करतीं और प्रतिमा को अलंकृत करने में प्रसन्नता अनुभव करतीं।

इन्हीं महिलाओं में एक ऐसी भी थी जो कुल की दृष्टि से भी और शील की दृष्टि से नीची समझी जाती थी। माता शारदामणि यह सब जानती थीं, पर उन्होंने कभी उस महिला को रोका नहीं वरन् अन्य संभ्रांत महिलाओं की तरह ही उसे आदर दिया और अलंकार विधि में प्रेमपूर्वक भाग लेने दिया। एक कुलीन महिला ने माताजी से कहा—अमुक स्त्री नीच कुल

की, गिरे चरित्र की है, उसे आप माता की प्रतिमा छूने न दिया करें। उसे मंदिर से बाहर ही रखा करें।

शारदामणि ने कहा—"पुत्री, गंगा में सभी स्नान करते हैं, उन नहाने वालों में मैले और मलीन भी होते हैं। पर इससे गंगा की न तो पवित्रता नष्ट होती है और न महिमा घटती है। जो गिरता है, अपने ही दोषों से गिरता है। स्पर्श किसी को गिरा नहीं सकता। फिर पापनाशिनी माता की पुण्यप्रभा उस महिला के स्पर्श से कैसे मलीन हो जाएगी ?"

कहने वाली महिला की समझ में उसकी भूल आ गई। उसने अपने विचार बदल दिए और शारदामणि से क्षमा माँगी।

परिश्रम करना गौरव की बात

अमेरिका के स्वाधीनता-संग्राम के समय एक नगर में किलेबंदी हो रही थी। अनेक सैनिक एक दीवार पर लकड़ी का लट्ठा चढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे, किंतु वह चढ़ नहीं रहा था। उनका नायक दूर से ही उत्साहित कर रहा था और कभी डाँट देता था। इतने में एक घुड़सवार उधर से निकला। वह रुका और नायक से कहा—"जरा आप भी हाथ लगाइए न, लकड़ी आसानी से चढ़ जाएगी।" नायक ने सवार की ओर आँख तरेर कर कहा—"जानते नहीं, मैं इस टुकड़ी का नायक हूँ, भला ऐसा छोटा काम कैसे कर सकता हूँ ?" सवार ने उतरकर सैनिकों की मदद की और लट्ठा बात-की-बात में चढ़ा दिया। घोड़े पर सवार होते समय नायक ने उसे धन्यवाद दिया। सवार ने कहा—"धन्यवाद की जरूरत नहीं महाशय, जब भी ऐसे काम में सहायता की जरूरत हो अपने प्रधान सेनापति को संदेश भेज देना। वह परिश्रम का गौरव जानता है।"

सच्चा आत्म-समर्पण करने वाली देवी

थाईजेंड ग्रीनलैंड पार्क में स्वामी विवेकानंद का ओजस्वी भाषण हुआ। उन्होंने संसार के नव-निर्माण की आवश्यकता का

प्रतिपादन करते हुए कहा—"यदि मुझे सच्चा आत्म-समर्पण करने वाले बीस लोक-सेवक मिल जाएँ, तो दुनिया का नक्शा ही बदल दूँ।"

भाषण बहुत पसंद किया गया और उसकी सराहना भी की गई, पर सच्चे आत्म-समर्पण वाली मांग पूरा करने के लिए एक भी तैयार न हुआ।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्वामी जी सोकर उठे, तो उन्हें दरवाजे से सटी खड़ी एक महिला दिखाई दी। वह हाथ जोड़े खड़ी थी।

स्वामी जी ने उससे इतने सबेरे इस प्रकार आने का प्रयोजन पूछा, तो उसने रुँधे कंठ और भरी आँखों से कहा—"भगवन् ! कल आपने दुनिया का नक्शा बदलने के लिए सच्चे मन से आत्म- समर्पण करने वाले बीस साथियों की माँग की थी। उन्नीस कहाँ से आएँगे, यह मैं नहीं जानती, पर एक मैं आपके सामने हूँ। इस समर्पित मन और मस्तिष्क का आप चाहे जो उपयोग करें।"

स्वामी विवेकानंद गद्‌गद् हो गए। इस भद्र महिला को लेकर वे भारत आए। उसने हिंदू साध्वी के रूप में नव-निर्माण के लिए जो अनुपम कार्य किया उसे कौन नहीं जानता ? वह महिला थी भगिनी निवेदिता—पूर्व नाम था मिस नोबल।

आत्मबल ही चमत्कार है

आज मुगल दरबार में विशेष हलचल थी। संधि-वार्ता हेतु सिक्खों के सम्माननीय गुरु गोविंदसिंह जी आज आमंत्रण पर पधारे थे। उनके गुरु शब्द से एक मौलवी के मन में रोष था। वह सोचता था, सेना-संचालन, युद्ध आदि के कार्यों से संत, गुरु का क्या संबंध ? उसने उनके आध्यात्मिक स्तर पर चोट करने के विचार से प्रश्न कर दिया—महाराज, आप गुरु हैं—अपने नाम की सार्थकता के उपयुक्त कुछ चमत्कार दिखलाएँ ?

गुरु गोविंदसिंह हँसे। बोले—"मौलवी जी, चमत्कार तथा आध्यात्मिकता का कोई सीधा संबंध नहीं है। गुरु का काम चमत्कार दिखाना नहीं, शिष्यों का सही मार्गदर्शन करना होता है।" पर मौलवी जी ने पुनः आग्रह किया—"कोई चमत्कार तो दिखाएँ ही ?" गुरुजी ने मुस्कराकर कहा—"चमत्कार ही देखना है, तो आँखें खोलकर देख लो, ईश्वर ने चारों ओर बिखेर रखे हैं। यह पृथ्वी, आकाश, तारे, वायु सभी चमत्कार हैं।" पर मौलवी का आग्रह था—मनुष्य का चमत्कार दिखाने हेतु। गुरुजी ने पुनः समाधान किया—"अपने शहंशाह का चमत्कार देख लो न ! किस प्रकार एक व्यक्ति की शक्ति पूरे राज्य में काम करती है।" पुनः आग्रह हुआ, "वह नहीं, अपनी सीमा में कुछ चमत्कार दिखाएँ।"

गुरु गोविंदसिंह के माथे पर बल पड़ गए। बिना रुके वे तड़पकर खड़े हो गए। म्यान से तलवार निकालकर कड़वी आवाज में बोले—"मेरे हाथ का चमत्कार देखने की शक्ति यदि तुझमें है, तो देख ! अभी एक हाथ से तेरा सिर अलग हुआ जाता है।"

मौलवी जी को पसीना छूट गया। यदि स्वयं शहंशाह उनको नम्रतापूर्वक रोककर, हाथ पकड़कर अपनी बगल में न बिठालते, तो मौलवी साहब खुदाबंद के दरबार में पहुँच चुके होते।

आत्म विश्वास की शक्ति

महामनीषी डिकेन्स, बचपन से ही निबंध लिखने के बड़े शौकीन थे, किंतु वे स्वयं लिखकर स्वयं ही फाड़ दिया करते थे। उन्हें मन में यह विश्वास ही नहीं जम पाता था कि वे अच्छे स्तर के होंगे।

अभी चार्ल्स को शिक्षा ग्रहण करते हुए चार वर्ष ही बीते थे कि उनके पिता को किसी से लिया हुआ कर्ज न चुका सकने के कारण जेल जाना पड़ा। अब तो घर पर मुसीबत का पहाड़ ही टूट

पड़ा। खाने के भी लाले पड़ने लगे। चार्ल्स डिकेन्स को लंदन की एक अँधेरी कोठरी में स्थित किसी छोटे-से उद्योग में लेबल चिपकाने का काम करना पड़ा। उसके साथ दो लड़के और रहते थे, उसी स्थान पर।

अब भी उसका यही क्रम रहता। रात को सबके सो जाने पर वह निबंध लिखता और तहखाने में छुपा देता। एक दिन अकस्मात् ही उसने देखा कि उसका एक निबंध मासिक पत्रिका में छपा है और उसके साथ ही प्रशंसात्मक टिप्पणी भी प्रकाशित की थी— संपादक ने अपनी ओर से। पढ़कर चार्ल्स को बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रोत्साहन के ये शब्द कि—"तुम्हारा मस्तिष्क निबंध लिखने के लिए बहुत ही उपयुक्त है।" उसका जीवन मंत्र ही बन गए। इससे उसके अंदर अपने प्रति आत्म-विश्वास जाग पड़ा और इतनी प्रगति की कि वे अपने समय के सबसे बड़े निबंध लेखक बन गए।

सहायता का आनंद 'विजय' से बड़ा

सन् १९०८ के ओलंपिक में यह विश्वास था कि अमेरिका का खिलाड़ी रेक्टर 'स्प्रिंट' स्वर्ण पदक जीतेगा। उसका प्रतिस्पर्धी था दक्षिणी अफ्रीका का वाकर, दोनों ही स्वर्ण पद प्राप्त करने की लालसा से अपने-अपने ढंग से तैयारी कर रहे थे। वाकर ने 'स्टैंडिंग स्टार्ट' नामक पद्धति का अभ्यास किया था, जो धीमी होती है। पर जब लोगों को पता लगा कि रेक्टर 'क्राउच स्टार्ट' पद्धति के अभ्यास में लगा है, तो सबको यह आशा हो गई कि रेक्टर अवश्य विजय प्राप्त करेगा।

'क्राउच स्टार्ट' की तकनीक से वाकर अनभिज्ञ था। वह चाहता यह था कि यदि कई पद्धतियों का अभ्यास कर लिया जाए, तो विजय श्री आसान हो सकती है। वह अपने प्रतिस्पर्धी रेक्टर के पास गया और बड़े संकोच से कहा—"क्या आप मुझे भी 'क्राउच स्टार्ट' तकनीक का अभ्यास करवा देंगे ? वैसे प्रतिस्पर्धा के लिए तो केवल एक सप्ताह ही शेष रह गया है।"

रेक्टर ने कहा—"क्यों नहीं ?" और वह बड़े अच्छे ढंग से उस तकनीक को सिखाता रहा तथा अपना अभ्यास भी करता रहा। प्रतिस्पर्धा का समय भी आ गया। अरे ! यह क्या देखने को मिला। वाकर ने बहुत थोड़े अंतर से ही रेक्टर को पराजित कर दिया, सो भी 'क्राउच स्टार्ट' नामक तकनीक से, जो कि उसने रेक्टर से सीखी थी।

हारने के बाद रेक्टर को अनेक व्यक्तियों ने घेरकर पूछा, "आपने अपने प्रतिस्पर्धी को ही अपनी तकनीक सिखाकर जोखिम क्यों ली ? देखा, अपनी हार के लिए आप स्वयं उत्तरदायी सिद्ध हो गए।" रेक्टर ने हँसते हुए उत्तर दिया, "भाइयों ! एक विजेता के प्रशिक्षण में हाथ बँटाने का आनंद स्वयं जीतने के आनंद से कहीं बड़ा होता है।"

लगन का फल

जिन दिनों पंजाब भर में उर्दू और फारसी का जोर था, हिंदी की ओर किसी का ध्यान भी न था, उन दिनों गो० गणेशदत्त जी ने हिंदी प्रचार का व्रत लिया कि वे नियमित रूप से लोगों को हिंदी पढ़ाएँगे। यह काम बड़ा कठिन था, कोई पढ़ने को ही तैयार न होता था। निदान उन्होंने एक टूटा कनस्तर हाथ में लेकर लायपुर के सारे शहर में स्वयं यह मुनादी की कि "जो भाई हिंदी पढ़ना चाहें, निःशुल्क हिंदी पढ़ाई जाएगी।" मुश्किल से कुछ छात्र मिले, तो उनको पढ़ाने के लिए जगह का प्रबंध न हुआ। इस पर उन्होंने एक खुले स्थान पर बैठकर मिट्टी के तेल की कुप्पी के प्रकाश में अपनी हिंदी पाठशाला आरंभ कर दी। उनकी यह पाठशाला कुछ समय बाद हाईस्कूल बन गई। इतना ही नहीं गोस्वामी जी ने भारत विभाजन होने से पूर्व पंजाब में ६० डिग्री कालेज, १५० इंटर कालेज, १०० कन्या पाठशालाएँ, १०० मिडिल स्कूल और ४ ब्रह्मचर्याश्रम, स्थापित किए जो अब तक बड़ी शान से चल रहे हैं।

छोटी आयु में बड़ी सफलता

लूथर ने इक्कीस वर्ष की आयु में धार्मिक सुधारों के लिए क्रांतिकारी हलचल पैदा कर दी थी। नेपोलियन ने पच्चीस वर्ष की आयु में इटली पर विजय प्राप्त की थी। न्यूटन ने इक्कीस वर्ष का होने से पूर्व ही अपने महत्त्वपूर्ण आविष्कार कर डाले थे। चेस्टरटन ने जब काव्य क्षेत्र में प्रवेश करके अपनी प्रतिभा से सबको आश्चर्य में डाल दिया था, तब वह इक्कीस वर्ष का था। विक्टर ह्यूगो जब पंद्रह वर्ष के थे, तब उन्होंने कई नाटक लिख लिए थे और तीन पुरस्कार जीते थे। सिकंदर जब दिग्विजय को निकला, तब कुल बाईस वर्ष का था। फ्रांस की क्रांति का नेतृत्व करने वाली जोन ऑफ ओर्क सत्रह वर्ष की थी।

यदि उत्कंठ इच्छा और अदम्य भावना जाग्रत् हो जाए, तो अल्प आयु में भी मनुष्य बहुत कुछ कर सकता है, बहुत कुछ बन सकता है।

अधूरी शिक्षा

खलीफा हारून अल रसीद की यह इच्छा हुई कि राज्य में घूमकर यह देखा जाए कि जनता सुखी है कि नहीं ? राज्य-कर्मचारी कानूनों के पालन में किसी प्रकार से बाधक तो सिद्ध नहीं हो रहे हैं। एक दिन खलीफा घोड़े पर सवार होकर अपने मंत्री को साथ लेकर बगदाद शहर का निरीक्षण करने निकले। एक विशाल भवन पर 'मदरसा अब्बासिया' का बोर्ड देखकर खलीफा ने मंत्री से पूछा—"क्या हमारे शहजादे अमीन व मामून इसी मदरसे में तालीम लेने आते हैं।" मंत्री के हाँ करने पर खलीफा घोड़े से उतरकर उस मदरसे में घुस गए। अंदर जाकर उन्होंने देखा कि सफेद दाढ़ी वाला एक वृद्ध अपने हाथ से पानी लेकर हाथ-मुँह धो रहा है।

उस वृद्ध ने खलीफा को सलाम किया। यह वृद्ध उन दोनों शहजादों के उस्ताद थे। उस्ताद के सलाम का उत्तर देते हुए

खलीफा ने कहा—"मैं आपके मदरसे का मुआयना करने आया था, पर दुःख है कि आपके मदरसे की तालीम ही अधूरी है। मैंने अभी देखा कि आप नमाज पढ़ने के लिए हाथ-मुँह धो रहे थे, उस समय शागिर्दों का यह फर्ज था कि वे आपके लिए पानी लाते और स्वयं आपके पैर धोते। उस्ताद का स्थान सबसे ऊँचा होता है, उसकी सेवा करना प्रत्येक शागिर्द का फर्ज है। मुझे दुःख है कि इतने वर्षों में भी मेरे शहजादों को सेवा का यह छोटा-सा पाठ भी आप न पढ़ा सके।"

पवित्रात्मा सब ओर पवित्रता ही देखती है

आचार्य रामानुज मंत्र पाठ करते हुए मंदिर की प्रदक्षिणा कर रहे थे कि वहाँ एक चांडाल स्त्री उनकी परिक्रमा के बीच में आ गई। आचार्य रामानुज ठिठककर रुक गए। उनका वेद पाठ खंडित हो गया। क्रोधपूर्वक बोले—"अरी चांडालिन ! मेरे रास्ते से हट जा, मेरी प्रदक्षिणा अपवित्र न कर !

चांडाल स्त्री हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ी हो गई और पूछने लगी—भगवन् मेरे चारों ओर पवित्रता ही पवित्रता व्याप्त है ! कृपया बतला दीजिए कि मैं अपनी पवित्रता लेकर किस ओर कहाँ चली जाऊँ ? स्वामी रामानुज आचार्य को उसके कथन से मानो ज्ञान मिल गया—हाथ जोड़कर बोले—"माँ ! मुझे क्षमा करो, तुम निश्चय ही पवित्रात्मा हो।"

विचार स्वातंत्र्य का सम्मान

एक बार एक अंग्रेज पादरी ने स्वामी श्रद्धानंद जी को लिखा कि मैं भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए आया हूँ, किंतु हिंदी का ज्ञान न होने से मुझे अपने कर्तव्य में कठिनाई हो रही है। मैं आपके गुरुकुल काँगड़ी में रहकर हिंदी सीखना चाहता हूँ। मैं वचन देता हूँ कि जब तक गुरुकुल में रहूँगा तब तक ईसाई धर्म का प्रचार विद्यार्थियों के बीच नहीं करूँगा।"

हिंदू धर्म के अखंड भक्त एवं विद्वान् स्वामी श्रद्धानंद ने पादरी को उत्तर लिख भेजा कि "आप अवश्य आकर गुरुकुल में रहें और हिंदी पढ़ें, किंतु इस बात का वचन दें कि यहाँ आकर आप अपने धर्म का प्रचार पूरी तरह करेंगे। इससे मुझे प्रसन्नता होगी, क्योंकि इससे मेरे विद्यार्थी ईसामसीह तथा उनके प्रचारित धर्म के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।"

पादरी स्वामी जी की यह धर्मनिष्ठा एवं उदारता देखकर इतना प्रभवित हुआ कि जीवन भर के लिए उनका मित्र बन गया।

मनुष्य का शरीर एक बहुमूल्य संपदा है

एक नवयुवक महात्मा टालस्टाय के पास आया और बोला—"महोदय मेरे पास एक पैसे की संपत्ति नहीं है। मैं जीवन में बहुत दुःखी तथा निराश हूँ।"

महात्मा टालस्टाय ने उससे सहानुभूति दिखाते हुए कहा—"मेरा एक व्यापारी मित्र है। वह आदमी के शरीर के अवयव खरीदता है। तुम चाहो तो मैं तुम्हें उससे मिला सकता हूँ ! वह तुम्हें तुम्हारी आँखों के लिए बीस हजार, हाथों के लिए पंद्रह हजार और पैरों के लिए दस हजार की रकम दे सकता है। यदि चाहो तो यह अंग बेचकर आज ही तुम पैंतालीस हजार के स्वामी बन सकते हो और यदि तुम उसके हाथ अपने शक्ति एवं यौवन से भरे-पूरे शरीर को बेच सको, तो वह तुम्हें खुशी से लाख रुपए दे सकता है। यदि धनवान् बनना चाहो, तो मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें आज ही उससे मिला देता हूँ।

युवक भौंचक्का-सा टालस्टाय की ओर देखता हुआ बोला—"आप यह क्या कहते हैं ? शरीर संपदा की तुलना में रुपया-पैसा क्या मूल्य रखता है ? एक लाख तो क्या, मैं इसे एक करोड़ में भी बेचने को तैयार नहीं हो सकता।"

महात्मा टालस्टाय हँसे और बोले—"जब तुम्हारे पास इतना मूल्यवान् शरीर है, तब तुम अपने को गरीब किस तरह कहते हो ?

युवक ! मनुष्य का यह शक्तिशाली शरीर साक्षात् कल्पवृक्ष है। इसको ठीक-ठीक उपयोग में लगाओ, श्रम करो और देखोगे कि तुम शीघ्र ही सुख-समृद्धि के स्थायी स्वामी बन जाते हो।"

पहला पत्थर वह मारे

व्यभिचार के अपराध में एक स्त्री को पकड़कर लाया गया। पंचों ने निश्चय किया कि पत्थर मार-मारकर उसका वध कर डाला जाए।

दर्शकों की भीड़ पत्थरों के बड़े-बड़े टुकड़े हाथ में लिए खड़ी थी। अपराधिनी का मस्तक लज्जा से झुका था, वह भय से थर-थर काँप रही थी।

ईसा उधर से निकले। लोगों ने उन्हें रोका और इस अपराध एवं दंड व्यवस्था पर अपना अभिमत प्रकट करने का अनुरोध किया।

लोगों को संबोधन करते हुए ईसा ने कहा—"अपराधी को दंड देना उचित है, पर पत्थर उन्हें मारने चाहिए, जिन्होंने कभी अपराध न किया हो। जो कभी व्यभिचार कर चुके हों, उनके लिए तो ऐसा करना सरासर अनुचित है।"

इस विवेक को दर्शकों ने ध्यानपूर्वक सुना। हाथों में रखे पत्थर नीचे गिरने लगे, भीड़ खिसकनी आरंभ हो गई। वध-स्थली पर अपराधिनी और ईसा दो ही खड़े थे। ईसा ने कहा—"भटकने वाली लड़की जा, प्रभु से क्षमा माँग और नेक जीवन व्यतीत कर।"

अपनी स्थिति का ध्यान

दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध सामाजिक नेता श्री श्रीनिवास शास्त्री एक समय विश्वविद्यालय के कुलपति थे। अध्यापकों द्वारा किए हुए जुर्मानों की अपील लेकर अक्सर छात्र उनके पास जा पहुँचते थे और उनसे माफी लिखा लाते।

एक दिन अध्यापक मिलकर शास्त्री जी के पास पहुँचे और कहा—"हम जुर्माना करते हैं और आप उसे माफ कर देते हैं, इस प्रकार क्या अनुशासन बिगड़ेगा नहीं ?"

शास्त्री जी ने सहानुभूति के साथ अध्यापकों की बात सुनी और उसका औचित्य भी माना। पर अपनी भावनागत कठिनाई बताते हुए उनसे कहा—"जब मैं छोटा था, तो बड़ी निर्धन स्थिति थी। साबुन खरीदने के लिए एक आना जब मेरी माता न जुटा सकी, तो मुझे मैले कपड़े पहनकर स्कूल जाना पड़ा। इस पर अध्यापक ने मेरे ऊपर आठ आना जुर्माना कर दिया। एक आना साबुन के लिए ही न था, तो आठ आना जुर्माना कहाँ से देता ?"

अपनी इस स्थिति का स्मरण मुझे हो आता है और छात्रों का जुर्माना माफ करने पर विवश होना पड़ता है।

हृदय परिवर्तन इस तरह

गाँधी जी का सत्याग्रह आंदोलन चल रहा था। ब्रिटिश सरकार भी गाँधी जी के नए-नए आंदोलनों से तंग आ गई थी। एक अंग्रेज अधिकारी ने तो क्रोध में यहाँ तक कह दिया, "यदि मुझे गाँधी अभी कहीं मिल जाए तो मैं उसे गोली से उड़ा दूँ।"

बात छिपने वाली न थी, गाँधी जी को भी सुनने को मिल गई। वह दूसरे दिन सुबह ही उस अंग्रेज के बँगले पर अकेले ही पहुँच गए। उस समय वह अँग्रेज सो रहा था, जगने पर गाँधी जी से भेंट हुई। उन्होंने कहा—"मैं गाँधी हूँ। आपने मुझे मारने की प्रतिज्ञा की है। आपकी प्रतिज्ञा आसानी से पूर्ण हो सके, अतः मैं यहाँ तक अकेला ही चला आया हूँ, अब आपको अपना काम करने में सुविधा होगी।" इतना सुनकर अंग्रेज पानी-पानी हो गया। मारने की कौन कहे, उसके मुख से कोई अपशब्द तक न निकला। उसका हृदय उसी समय बदल गया था, बाद में तो वह गाँधी जी का परम भक्त बन गया।

पश्चाताप

एक बार गाँधी जी इतने थक गए कि उन्हें चारपाई पर लेटते ही नींद आ गई। रात्रि को दो बजे जब आँख खुली तो उन्हें स्मरण हुआ कि वे रात्रि को सोने से पूर्व प्रार्थना करना भूल गए।

उन्हें इसका बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उनका शरीर थर-थर काँपने लगा तथा पसीने से लथपथ हो गया। प्रातःकाल लोगों के पूछने पर उन्होंने सारी बात बताते हुए कहा—"जिस भगवान् की कृपा से मैं जीवित हूँ, उस भगवान् को ही भूल गया, इससे बड़ी और क्या गलती होगी ?"

धीर वीर और नेमी

घटना सन् १९४६ की है। बंबई बंदरगाह के नौ सैनिकों ने विद्रोह का झंडा ऊँचा कर दिया था। अंग्रेज अधिकारियों ने उन्हें गोली से भून देने की धमकी दी थी, साथ ही भारतीय नौ सैनिकों ने जवाब में उनको खाक कर देने की चुनौती दे रखी थी।

बड़ी भयानक स्थिति थी। उस समय बंबई का नेतृत्व सरदार पटेल के हाथ में था। लोग उनकी तरफ बड़ी घबड़ाई नजरों से देख रहे थे, किंतु सरदार पर परिस्थिति का रंच-मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। न तो वे अधीर थे और न विचलित।

बंबई के गवर्नर ने उन्हें बुलाया और काफी तुर्शी दिखाई। इस पर सरदार ने शेर की तरह दहाड़कर गवर्नर से कह दिया कि वह अपनी सरकार से पूछ ले कि अंग्रेज भारत से मित्रों के रूप में विदा होंगे या लाशों के रूप में।

अंग्रेज गवर्नर सरदार का रुद्र रूप देखकर काँप उठा और फिर उसने कुछ ऐसा किया कि बंबई प्रसंग में अंग्रेज सरकार को समझौता करते ही बना।

समर्थ गुरु की महानता

समर्थ गुरु रामदास को सुविधापूर्वक जितनी भिक्षा मिल जाती, उतने में ही काम चला लेते थे। एक दिन प्रातःकाल उन्होंने भिक्षा के लिए एक घर का द्वार खटखटाया तो उन्होंने देखा कि गृहस्वामिनी किसी कारणवश आग-बबूला हो रही है और अनाप-शनाप बक रही है। उस समय वह अपना चौका पोत रही थी। उसने समर्थ गुरु की आवाज सुनी, तो उसे और गुस्सा

आ गया कि सुबह-सुबह कौन भिखारी आ गया ? वह उठी, दरवाजा खोला और चौका लगाने का वह पोतना उनके मुँह पर दे मारा।

समर्थ गुरु तनिक भी रुष्ट न हुए, उन्होंने उस चौका लगाने वाले गंदे कपड़े को अपने कमंडल में रख लिया और नदी पर स्नान के लिए चले गए, वहाँ उन्होंने उस कपड़े को खूब धोया। अब वह साफ दिखाई देने लगा था। धूप में सुखा लिया, फिर स्नान करके अपनी कुटिया पर लौट आए।

शाम को भगवान् की आरती के लिए उसी पोतने की बत्तियाँ बनाईं। आरती करते समय भगवान् से प्रार्थना की कि जिस प्रकार यह बत्ती प्रकाश दे रही है, उसी प्रकार उस महिला का हृदय भी प्रकाशवान् हो।

कस्तूरबा ने हार मानी

एक बार कस्तूरबा बीमार थीं। उनकी बीमारी के निवारण के लिए गाँधी जी ने उन्हें नमक छोड़ने को कहा। कस्तूरबा इस बात पर झल्ला उठीं, बोली, "कभी नमक भी छोड़ा जा सकता है। आप तो विचित्र-विचित्र बात कह देते हैं।"

इस पर महात्मा गाँधी ने नमक छोड़ने का व्रत ही ले लिया। कस्तूरबा को अपनी हार माननी पड़ी।

मुझे कुछ नहीं चाहिए

रामकृष्ण परमहंस की माता वृद्धावस्था में गंगातीर पर रासमणि के कालीघाट पर रहने लगीं। रानी रासमणि के दामाद ने उनके लिए गुजारे का प्रबंध करना चाहा। तो माता ने कहा—"न बाबा न ! मुझे कुछ न चाहिए। रोज सवेरे गंगास्नान करती और काली माँ का प्रसाद लेती हूँ ! मेरे लिए यही सब कुछ है।" उनके बहुत ही आग्रह पर उन्होंने कुल दो पैसे का पान मँगाकर उनका आग्रह पूरा किया। यह सुन वे बोल पड़े—"हाँ माँ ! यदि ये त्याग न होता तो परमहंस देव कैसे जन्मते ?"

सशर्त दान

एक विदेशी पादरी जुगलकिशोर बिरला के पास आर्थिक सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से पहुँचे और बोले—"मैं आपसे यह अपेक्षा लेकर आया हूँ कि मेरी आर्थिक मदद करें।"

बिरला जी यह अच्छी तरह जानते थे कि अधिकतर पादरी धन का लालच देकर हिंदुओं को ईसाई बना लेते हैं। फिर भी उन्होंने उस पादरी को निराश लौटाना उचित नहीं समझा। धन देने के साथ ही उन्होंने अपनी शर्त बताते हुए कह दिया, "आप इस धन को केवल ईसाइयों के लिए खर्च करें, हिंदुओं के लिए नहीं।"

ईसाई पादरी श्री बिरला जी से प्रभावित हुआ, साथ ही उनकी धर्मनिष्ठा देखकर स्तब्ध भी रह गया।

पैंसिल का टुकड़ा

बापू बहुत देर से किसी चीज को ढूँढ़ने में परेशान थे। काका साहब ने पूछा, "बापू आप क्या ढूँढ़ रहे हैं ?" "पैंसिल का टुकड़ा" बापू का छोटा-सा उत्तर था।

काका साहब अपनी पेटी से पैंसिल निकालकर बापू को देने लगे। उन्होंने उस पैंसिल को लेने से इनकार कर दिया और कहा, "मैं उसी छोटी पैंसिल को चाहता हूँ, केवल उसी टुकड़े को, क्योंकि वह मेरे छोटे लड़के के मित्र ने मुझे दी थी। अतः उसे मैं कैसे खो सकता हूँ ?"

काका साहब बोले, "बापू ! अभी आपको पैंसिल की आवश्यकता है, तो आप दूसरी पैंसिल से कार्य निकाल लीजिए, फिर मैं आपकी पैंसिल ढूँढ़ दूँगा।" उन्होंने सिर हिलाया।

बापू और काका साहब दोनों ने उस पैंसिल को ढूँढ़ा। थोड़ी देर में वह पैंसिल मिल गई। वह पैंसिल का छोटा-सा टुकड़ा था। बापू को बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके लिए प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता थी। वह छोटी-से-छोटी वस्तु को भी बेकार नहीं समझते थे।

पेट है, कब्रिस्तान नहीं

जार्ज बर्नार्ड शा ब्रिटेन के प्रसिद्ध साहित्यकार ही नहीं, माने हुए शाकाहारी भी थे। एक बार उन्हें एक भोज में सम्मिलित होने का निमंत्रण मिला। उस भोज में शाकाहारियों के खाने के लिए कोई चीज नहीं थी। एक सलाद ही ऐसा था, जिसे खाया जा सकता था।

भोज शुरू हुआ। सब लोग भोजन करने लगे। शा बेचारे पहले तो चुपचाप बैठे रहे। फिर सलाद ही खाने लगे। यह देखकर उनके पास बैठे हुए एक सज्जन बोले—"मिस्टर शा ! इतनी स्वादिष्ट चीजों के होते हुए भी आप यह क्या खा रहे हैं ?"

इस पर शा ने बड़ी सादगी से उत्तर दिया—"मेरा पेट कब्रिस्तान नहीं है, महोदय ! इसमें केवल साग-सब्जियों के लिए जगह है, मुर्दों के लिए नहीं।"

धोखा नहीं दे सकता

जापान के एक दुग्ध विक्रेता के पास एक हिंदुस्तान "पेइंग गेस्ट" के रूप में रह रहे थे। एक दिन वह दूध बेचने वाला बहुत परेशान दिखाई दिया। हिंदुस्तानी ने इसका कारण पूछा। दुग्ध विक्रेता ने बताया—"आज १० सेर दूध कम मिला है, मुझे इस बात की परेशानी है, आज मेरे देश के बच्चों को जो दूध पर आश्रित हैं, कम दूध मिलेगा। यह कमी कैसे पूरी हो इसी बात की चिंता है ?" भारतीय मित्र बोले—"इसमें परेशानी की क्या बात है, उतना पानी मिलाकर वजन पूरा कर लो।" हिंदुस्तानी की बात पर जापानी बड़ा आश्चर्यचकित हुआ। उसने कहा—"महाशय ! मेरे बच्चे भूखे रह लेंगे, सो ठीक, पर मैं उन्हें धोखा कदापि नहीं दे सकता, जो मेरे विश्वास पर शुद्ध दूध पाने की आशा करते हैं।" यह सुनकर हिंदुस्तानी महोदय बड़े शर्मिंदा हुए।

अभिमानी की हार

अटलांटा को जूपिटर ने आशीर्वाद दिया था, तुझसे तेज कोई भी न दौड़ सकेगा, इसलिए उसने अहंकारवश यह घोषणा कर दी, "जो उसे दौड़ में परास्त करेगा, वह उसी से विवाह करेगी।"

बहुत-से लोग आए पर वे अटलांटा को दौड़ में हरा न सके। एक मनुष्य ने जूपिटर (भगवान्) से प्रार्थना की, "हे प्रभु ! मुझे अटलांटा से प्रेम है, किंतु उसकी तरह दौड़ने की शक्ति नहीं। मुझे वह शक्ति दो प्रभो !" मूर्ति बोली—"पुत्र ! यह वरदान तो अटलांटा को ही मिला है, पर हाँ एक उपाय है—अहंकारी व्यक्ति को विवेक नहीं होता, तुम दौड़ के रास्ते में कुछ स्वर्ण मुद्राएँ बिखेर देना, फिर जीत तुम्हारी होगी।" उस व्यक्ति ने ऐसा ही किया। अटलांटा दौड़ी तो पर सिक्कों के लालच में बार-बार रुकी और वह आदमी आगे निकल गया। उसने अटलांटा को भी पा लिया और स्वर्ण मुद्राओं को भी।

संयम से सफलता

नैपोलियन बोनापार्ट तब विद्यार्थी था उसने रहने के लिए एक नाई का मकान किराए पर ले रखा था। नाई की एक सुंदर युवती कन्या भी थी। वह किसी प्रकार नैपोलियन को अपने जाल में फाँसना चाहती थी, अतएव उसके सामने सदैव काम कुचेष्टाएँ करती रहती। नैपोलियन यह सब देखता तो पर उन बातों की उपेक्षा करके चुपचाप अपनी पढ़ाई में लगा रहता।

बात जहाँ की तहाँ समाप्त हो गई। कुछ दिन पीछे नैपोलियन सेना में चला गया। बाल्यकाल में संयमित जीवन बिताने के कारण शारीरिक शक्ति और बुद्धि कौशल का उसमें अभाव नहीं था; इसीलिए वह २५ वर्ष की अल्पायु में ही सेनापति बना दिया गया।

एक बार वह किसी काम से अपने उसी विद्यालय में गया, जहाँ उसने शिक्षा पाई थी। प्रसंगवश वह उस युवती से भी मिला

और पूछा—"इस मकान में कभी एक विद्यार्थी रहता था, तुम उसे छेड़ती रहती थीं, है याद उसकी।" युवती ने रूखेपन से कहा—"था, एक नीरस, किताबी कीड़ा"।

नैपोलियन ने कहा—"सचमुच बहन ! पर यदि वह वासना के आकर्षण में फँस जाता, तो आज सेनापति के रूप मे तुम्हारे सामने उपस्थित न होता ?"

माँ का आशीष

खींची, अमरसिंह के पिता ने आबू के युद्ध में वीरगति पाई। तब से उनके लालन-पालन ही का नहीं, शिक्षा-दीक्षा का भी भार माता के कंधों पर आ पड़ा। माँ ने उसे शिक्षा दिलाई और उन कठोर परिस्थितियों की दीक्षा भी, जिन पर धैर्यपूर्वक स्थिर रहकर लोगों के व्यक्तित्व महान् बनते हैं।

शिक्षा समाप्त कर अमरसिंह माँ से आशीर्वाद लेने गए। उन्हें आशा थी कि माँ अब उसे गृहस्थ रूप में बाँधकर हास-विलास का जीवन जीने की आज्ञा देगी, पर जब वह उनके पास पहुँचा तो माँ ने शीश पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटा आशीर्वाद तो तब दूँगी, जब मुझे यह विश्वास हो जाएगा कि तू जातीय आदर्शों की रक्षा कर सकता है।"

इससे आगे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी। अमरसिंह देश को स्वतंत्र कराने में जुट गए और १८५७ में एक शहीद के रूप में सदैव के लिए अमर हो गए।

शराब भी नहीं—दावत भी नहीं

विट्ठलभाई पटेल उन दिनों बंबई कॉर्पोरेशन के अध्यक्ष थे। लार्ड रीडिंग बंबई आने वाले थे, उनके स्वागत के लिए कॉर्पोरेशन की ओर से एक समारोह आयोजित करने का निश्चय किया गया। कॉर्पोरेशन में बहुमत तो कांग्रेस का था नहीं; अत: मतों के आधार पर किसी बात को मनवाना कठिन था। उस निश्चय के आधार पर समारोह में अध्यक्ष को भी उपस्थित होना

था। विट्ठलभाई इसके लिए राजी न थे, अतः उन्होंने अध्यक्ष पद से त्याग-पत्र दे दिया।

उन दिनों यह परंपरा थी कि प्रतिवर्ष अध्यक्ष गवर्नर को दावत देता था। दावत में हजारों रुपये खर्च होते थे और शराब पानी की तरह बहती थी। बिट्ठल भाई तो ट्राम में सफर करने वाले अध्यक्ष थे। उनके पास इतना धन कहाँ से आता ? उन्होंने यह प्रस्ताव पास करा दिया कि दावत में शराब नहीं चलेगी। उसका परिणाम यह हुआ कि दावत में शराब नहीं तो दावत भी नहीं और यह रिवाज उन्होंने ऐसा मिटाया कि आज तक फिर से शुरू ही न हो पाया।

प्रसन्नता का रहस्य

स्वतंत्रता मिलने के बाद देश में सांप्रदायिक दंगों की हवा चल पड़ी थी। एक दिन शाम को किसी कार्यकर्ता ने आकर गाँधी जी को कोई दर्दनाक बात बताई। अब तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। वे बोले—"इस तरह इन घटनाओं का अंत होने वाला नहीं है। अब मुझे उपवास रखना ही पड़ेगा" और दूसरे ही दिन से गाँधी जी ने उपवास-व्रत ले लिया।

अगले दिन शाम को कुछ कार्यकर्ता गाँधी जी से भेंट करने गए, तो उन्होंने गाँधी जी को बहुत ही प्रसन्न पाया। वे सोच रहे थे कि जब व्रत शुरू किया है, तब तो इन्हें कुछ उदास होना चाहिए था। आखिर वह पूछ ही बैठे, "गाँधी जी ! आज आप इतने प्रसन्न क्यों नजर आ रहे हैं ?"

गाँधी जी ने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया—"कल तक मैं अन्याय की बात सुनता था और चुप हो जाता था। पर आज से अन्याय का विरोध करने की शक्ति भी मुझ में आ गई है और अब मैंने अन्याय का सामना करने का संकल्प भी कर लिया है। मेरे लिए इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है ?"

अतिथि खाली हाथ न जाए

लगभग ५० साल पहले की घटना है। अफ्रीका में एक खोजा परिवार रहता था। अत्यधिक समृद्ध एवं उदार, दरवाजे से कोई याचक कभी खाली हाथ नहीं लौटा। समय बदला। व्यवसाय घाटे में जाने लगा, नौकर, मुनीम आदि कर्मचारियों को हटाया गया। उन पर तमाम कर्ज हो गया था, अतः पत्नी के आभूषण बेचकर सारा हिसाब साफ किया। ऐसी दयनीय स्थिति, उस पर सेठजी बीमार पड़ गए और असाध्य बीमार। रही-सही रकम डॉक्टरों की जेब में चली गई। अब तो वह एक-एक पैसे के लिए परेशान रहने लगे। फिर भी एक पुराना मुनीम बिना वेतन के उनके यहाँ सेवा-भाव से कार्य करता रहा था।

उसी नगर में एक भारतीय ब्राह्मण भी रहता था, उसके पास स्वदेश लौटने के लिए जहाज का किराया तक न था। उसने इधर-उधर माँगने की कोशिश की, पर अपरिचित व्यक्ति पर कौन विश्वास करे ? कि यह हजारों मील दूर अपने घर जाकर भेज ही देगा। लोगों ने उसे खोजा परिवार के घर की राह बता दी।

ब्राह्मण ने सेठ जी को अपनी सारी स्थिति बताते हुए २५० रु० की माँग की। आज न उनके पास इतना धन था और न कोई कीमती वस्तु ही जिसे बेचकर आए हुए ब्राह्मण देवता की इच्छा पूर्ण कर सकें। उनकी पत्नी सामने ही खड़ी थीं। उनके शरीर पर एक दृष्टि डालते हुए सोचने लगे कि सारे जेवर तो कर्ज चुकाने में बिक चुके हैं, अब रखा ही क्या है ?

उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—'फातिमा ! तुम जानती ही हो कि मैं थोड़े दिनों का ही मेहमान हूँ। मेरे मरने के बाद तुम्हें अपनी नाक की हीरे की लौंग निकालनी ही पड़ेगी। यदि उसे कुछ दिन पूर्व ही निकाल लो तो मेरी इच्छा भी पूर्ण हो जाएगी और अतिथि को खाली हाथ विदा भी न करना पड़ेगा।

पत्नी ने बिना किसी आना-कानी के यह लौंग निकालकर दे दी। मुनीम ने उसे बेचकर ब्राह्मण देवता के मार्ग व्यय का इंतजाम कर दिया।

धीरज, सफलता का कारण

अल्फ्रेड और एंटोनी दो भाई पिता की मृत्यु के बाद अच्छी संपत्ति के उत्तराधिकारी बने; किंतु एकाएक आग लग जाने से उनकी सारी संपत्ति जलकर नष्ट हो गई, केवल दो गाएँ बचीं। अल्फ्रेड इस घटना से भविष्य के प्रति इतना चिंतातुर हो उठा कि अगले ही वर्ष उसकी मृत्यु हो गई, जबकि छोटे भाई ने एक गाय से दूध का धंधा प्रारंभ किया और स्विट्जरलैंड का सबसे धनी फार्म मालिक बन गया।

परोपकार कभी निष्फल नहीं जाता

उन दिनों रोम में दासों पर बड़े अत्याचार किए जाते थे। एंड्रोक्लीज नामक एक दास भी जो अपने मालिक द्वारा बुरी तरह सताया जाता था, एक दिन अवसर पाकर रात में भाग निकला। भागते-भागते वह एक जंगल में पहुँच गया, किंतु संयोगवश वह जिस वृक्ष के नीचे बैठकर अपने जीवन पर सोचने लगा; उसी के निकट एक झाड़ी में एक सिंह बैठा था। एंड्रोक्लीज ने सोचा कि वह निर्दयी मालिक से तो ज्यों-त्यों बच गया, किंतु इस शेर से कदापि नहीं बच सकता, पर एंड्रोक्लीज को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सिंह धीरे से उसके पास आया और उसके हाथ पर अपना पंजा रख दिया। एंड्रोक्लीज ने देखा कि उसके पंजे में काँटा लगा हुआ था। एंड्रोक्लीज ने अपना चाकू निकाला और शेर के पंजे का काँटा निकाल दिया।

अदालत लगी और राज-नियम के अनुसार भागने के अपराध में एंड्रोक्लीज को प्राणदंड सुना दिया गया और यह तय हुआ कि उसे भूखे शेर के सम्मुख डालकर मरवाया जाए। इसके लिए एक शेर भी पकड़कर आ गया और कई दिन तक भूखा भी रखा गया।

नियत दिन और समय पर रोम के अमीर, आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष उस मृत्यु-दृश्य का खेल देखने के लिए आए। एंड्रोक्लीज भूखे शेर के पिंजरे में ढकेल दिया गया। शेर भयानक रूप से गरजकर एंड्रोक्लीज के पास आया और मुँह फैलाकर उसे दबोचने ही वाला था कि दर्शकों ने आश्चर्य से देखा कि शेर उसे खाने के बजाए, सिर झुकाए मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए एंड्रोक्लीज के पास दुम हिलाकर गुर-गुर करने लगा। एंड्रोक्लीज ने सिर उठाया और देखा कि वह उसका वही मित्र सिंह था, जिसका उसने काँटा निकाला था। अप्रत्याशित दृश्य देखकर न्यायाधीश ने कहा कि एंड्रोक्लीज भाग्यवान् है, उसे सदा के लिए मुक्त कर दिया जाए। निश्चय ही परोपकार कभी निष्फल नहीं जाता।

सद्ग्रंथों की रक्षा

यह वह समय था, जब भारत के तत्त्व ज्ञान का आलोक विश्व के कोने-कोने में फैला हुआ था। दूर देशों से यात्री आते और भारत से ज्ञान ले जाकर अपने देशवासियों को उसका मर्म समझाते।

इसी प्रकार लगभग दो हजार वर्ष पूर्व ह्वेनत्सांग नाम का एक चीनी यात्री ज्ञानार्जन के लिए भारत आया। उसने अनेक विद्यापीठों और विश्वविद्यालयों में रहकर, भारतीय दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया। ह्वेनत्सांग आया तो केवल कुछ ही समय के लिए था, किंतु जब उसे भारतीय ज्ञान के रहस्य खुलते मिले, तब उसकी ज्ञान-जिज्ञासा इतनी बलवती हो उठी कि भारत में जमकर लगभग बारह साल तक दर्शन का अध्ययन करता रहा। अपना अध्ययन पूरा करने के बाद ह्वेनत्सांग अनेक दुर्लभ ग्रंथों की पांडुलिपियाँ अपने साथ लेकर अपने देश चीन लौट चला। वह नाव द्वारा जल मार्ग से अपने देश, चीन को वापस जा रहा था। लगभग आधी यात्रा के बाद तूफान आ गया। नाव में पानी भर गया और वह बोझिल होकर बैठने लगी।

ह्वेनत्सांग के साथ वाले भारतीय छात्र उस आसन्न अंत के समय भी अधीर न होकर ज्ञान ग्रंथों तथा विद्वान् अतिथि की रक्षा का उपाय सोचने लगे। पूछने पर मल्लाह ने बतलाया यदि एक-आध को छोड़कर बाकी सब लोग नाव को रिक्त कर दें, तो वह पार लग सकती है। बस फिर क्या था, सारे छात्रों ने सिंधु के अथाह जल में कूदकर आत्म-बलिदान कर दिया।

जल सर्वोत्तम पेय

अमेरिका दार्शनिक थोरो शुद्ध जल को सर्वोत्तम पेय समझते थे। सिगरेट का तो उन्होंने कभी प्रयोग ही नहीं किया। वे गौरव के साथ कहते थे—"लोगों को इस बात का गर्व होता है कि उनके भोजन पर कितना अधिक खर्च होता है, पर मुझे इस बात का अभिमान है कि मेरे भोजन पर कितना कम खर्च होता है।" इसीलिए थोरो ने कभी भी प्रीतिभोजों में भाग नहीं लिया। आज के युग में दिखावटी सभ्यता और खोखले बाह्य प्रदर्शनों के बीच थोरो का यह संदेश प्रेरणादायक है।

मेरा नहीं तेरा

तक्षशिला को जीतने तक सिकंदर इतना थक चुका था कि वह कुछ दिन आगे न बढ़ सका। विश्राम के लिए कुछ दिन वहीं रुक गया।

निरंतर क्रियाशील रहने वाले सिकंदर को चुपचाप बैठा नहीं रहा जाता था, इसलिए इस समय का उपयोग उसने ज्ञानार्जन में किया।

एक दिन सिकंदर भारतीय जीवन की झाँकी देखने के लिए वहाँ से एक ओर चुपचाप चल पड़ा। अभी वह कुछ दूर ही गया था कि एक गाँव में कुछ आदमियों को बातचीत करते देखा। सिकंदर यह जानने के लिए कि वहाँ क्या हो रहा है, उधर ही चल पड़ा। वहाँ जाकर मालूम हुआ, किसी मामले पर पंचायत हो रही है।

भारतीयों में न्याय किस प्रकार होता है ? यह जानने के लिए सिकंदर भी वहीं जमीन पर चुपचाप बैठ गया।

एक आदमी खड़ा होकर बोला—"भाइयों ! जिस जमीन में जोतते समय मुझे स्वर्णमुद्राओं से भरा यह घड़ा मिला है, वह जमीन मैंने इनसे खरीदी है। मैंने जमीन खरीदी है—स्वर्ण मुद्राएँ नहीं, इसलिए यह मेरी नहीं—इनकी हुई।"

प्रतिवादी ने खड़े होकर उत्तर दिया, "जब मैंने जमीन का मूल्य ले लिया तो उसके बाद उसमें कंकड़ हों या पत्थर उनसे मेरा कोई संबंध नहीं रहा। फिर पराया धन लेने का पाप मैं क्यों अपने सिर लूँ ?"

दोनों किसान अपने-अपने कथन से एक इंच भी पीछे हटने को तैयार न थे। ग्रामवासी देख रहे थे कि पंचायत मुकदमे का फैसला कैसे करती है ?

पंचों ने परस्पर विचार किया और फिर उत्तर दिया—"जब आप में से कोई भी धन लेने को तैयार नहीं तब यह संपत्ति सारे गाँव की है। इससे एक गुरुकुल स्थापित किया जाए और जब तक वह स्थापित होकर कार्यकारिणी न बन जाए, तब तक उसकी संपूर्ण व्यवस्था यह दोनों व्यक्ति देखें।

इस फैसले से न केवल वह दोनों व्यक्ति वरन् ग्रामीण भी संतुष्ट हुए। सिकन्दर ने सोचा जिस देश के नागरिकों में धन के प्रति जरा भी मोह न हो, जहाँ की पंचायतें लोकसेवा को न्याय मानती हों, ऐसे नागरिकों को पराधीन नहीं रखा जा सकता।

मीरजाफर द्वारा विश्वासघात

सन् १७५७ की बात है—अंग्रेज बंगाल पर अपना कब्जा करने का प्रयत्न कर रहे थे, किंतु नवाब सिराजुद्दौला की नीतिमय वीरता से उनकी दाल न गलती थी। बार-बार मुँह की खाने पर अंग्रेजों ने कूटनीति से काम लिया। उन्होंने सिराजुद्दौला के सेनापति पर डोरे डालने शुरू किए। उन्हें पता लग गया कि मीरजाफर एक

कुशल सेनापति होते हुए भी बड़ा लालची और कमजर्फ आदमी है। अंग्रेजों ने उसका लाभ उठाया और उसे बंगाल का नवाब बना देने का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। मीरजाफर नबावी का स्वप्न देखता हुआ बड़ा खुश रहने लगा।

इधर अंग्रेजों ने नई तैयारी करके बंगाल पर फिर आक्रमण किया। सिराजुदौला ने सेनापति मीरजाफर को मोर्चे पर भेजा। नबाव के मन बढ़े सिपाही बड़ी वीरता से लड़े, किंतु गद्दार मीरजाफर ने उन्हें हतोत्साहित करके अस्त-व्यस्त कर दिया। अंग्रेजों की जीत हो गई, जिसके फलस्वरूप बंगाल पर उनका अधिकार हो गया।

मीरजाफर ने जब अपना वचन पूरा करने को कहा, तो अंग्रेज सेनापति ने घृणा से यह कहकर उसे तलवार के घाट उतार दिया—'कि ऐ विश्वासघाती कुत्ते ! तू बंगाल का सुल्तान होने का स्वप्न देख रहा है। तेरे जैसे गद्दार को दुनिया में जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है। जब तू अपने मालिक और मुल्क का न हुआ, तो हमारा ही क्या होगा ?"

मानवता का छोटा-सा पुजारी

दरवाजा खोला, देखा ! भीतर एक स्त्री बंद है। कुलवंत सिंह ने पूछा—"आप कौन हैं ? आपको यहाँ किसने बंद किया है ? लगता है—आप को तंग किया गया है।"

युवती बड़ी कठिनाई से बोल पाई—"मैं यहीं दिल्ली की रहने वाली हूँ। नसीरन मेरा नाम है। हिंदू-मुस्लिम झगड़े के समय मेरे भाई और पिता को लोग न जाने कहाँ पकड़ ले गए हैं ? मुझे इस घर के मालिक के हाथ बेच दिया गया है। मैं अपने भाई या पिता की मर्जी के खिलाफ ऐसा कोई भी काम न करूँगी, जिससे मेरी आत्मा कलंकित हो। धन से मेरा शरीर खरीदा जा सकता है, पर आत्मा नहीं। जब मैंने इस मकान के मालिक से विवाह न करने का दृढ़ निश्चय व्यक्त किया तो यह सजा दी गई।"

कुलवंत यद्यपि सिख था। स्वयं भी पाकिस्तान से मुसलमानों के हाथ लुटकर आया था। तो भी उसके मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हुआ। उसने कहा—"बहन ! संसार बड़ा विचित्र है। यहाँ वर्ण-संप्रदाय, ऊँच-नीच का भेदभाव लगाकर सैकड़ों निरीहों को पीड़ित किया जाता है। यदि यही धर्म है तो मैं समझूँगा धर्म की कोई आवश्यकता नहीं रही। उससे अच्छी तो मानवता है, जो एक-दूसरे के दुःख-दर्द में सहायता पहुँचाने, सेवा करने, औरों के लिए कर्त्तव्यपरायण और सहिष्णु बनने की प्रेरणा देती है। मनुष्य, मनुष्य के दर्द को समझे इससे बड़ा धर्म और क्या हो सकता है ?"

देर लगाने का समय न था। कुलवंत ने स्थिति का अनुमान कर लिया था कि यह सब उसके भाई की ही करतूत है, वह भाई से झगड़ा भी मोल नहीं लेना चाहता था और मानवता यह भी चाह रही थी कि इस युवती की किसी भी भाँति प्राण रक्षा होनी चाहिए।

दंगा-पीड़ितों का काम उन दिनों बकाई साहब देख रहे थे। कुलवंत सिंह ने जोखिम सिर मोल लिया। टैक्सी की और नसीरन को बकाई साहब, जो एक मुसलमान थे, के घर पहुँचा दिया। बकाई साहब ने इस उदारता की चर्चा गाँधीजी से की। गाँधीजी ने कहा—"मैं उससे मिलूँगा। मनुष्य चाहे जितना छोटा हो, यदि उसमें मनुष्यता है, गुण है, दूसरों के दुःख-दर्द पहचानने और परोपकार में अपना सब कुछ उत्सर्ग करने की भावना है। वह तो सचमुच महान हैं, भले ही इतिहास उनका नाम न चमकाए। उन्हें यश न मिले।"

बाद में बापू जी स्वयं ही इस युवक से मिले।

आत्म-संयम और अनुशासन की शिक्षा

कलकत्ता हाईकोर्ट के जज स्वर्गीय श्री गुरुदास बनर्जी एक बार वायसराय के साथ कानपुर से कलकत्ता के लिए यात्रा कर रहे थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन संबंधी किसी आवश्यक चर्चा के लिए वायसराय ने उन्हें अपने ही डिब्बे में बुला लिया। बातचीत

के मध्य भोजन का समय हुआ, तो वायसराय ने उनसे भी भोजन पाने का अनुरोध किया। बनर्जी साहब ने उत्तर दिया—"मैं रेल में कुछ नहीं खाता। थोड़ा-सा गंगाजल रखे हुए हूँ, वही पी लेता हूँ।"

वायसराय को विश्वास नहीं हुआ। इतना प्रगतिशील व्यक्ति भी धार्मिक मान्यताओं का इतना कट्टरता के साथ पालन कर सकता है। उन्होंने कहा—"तो फिर अपने लड़के को ही भोजन ग्रहण करने के लिए कहिए।" पर बच्चे ने भी इनकार करते हुए कहा—"मेरे पास घर की बनी थोड़ी-सी मिठाई है, उसका नाश्ता कर लिया है। अन्य कोई वस्तु ग्रहण न करूँगा।"

वायसराय आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने कहा—"आप लोग उपवास कर रहे हैं, तो मैं ही भोजन कैसे ग्रहण करूँ ?" वायसराय की आज्ञा से इलाहाबाद में गाड़ी रोक दी गई। वहाँ बनर्जी ने अपने पुत्र सहित त्रिवेणी स्नान किया, भोजन किया, तो फिर गाड़ी आगे बढ़ी।

लौटने पर वायसराय को धन्यवाद देते हुए उन्होंने कहा—"कुछ खा-पी लेने से किसी की जाति जाती हो—इस संबंध में मेरा कोई तर्क नहीं, पर इन नियमों के पालन से आत्मसंयम और अनुशासन की शिक्षा मिलती है। हमारे धर्म और संस्कृति में जो ऐसी बातें हैं, उनको मैंने इसीलिए हृदय से स्वीकार किया है।"

निश्छल आत्मा स्वयमेव देव शक्ति

अमेरिकी राष्ट्रपति वाशिंगटन के कुटुंब में दो बहनें, जिनका नाम जॉन और वर्जिना था, अपने दोनों भाइयों फ्रेड और जैक से बहुत स्नेह करती थीं। भाई-बहिनों के इस प्रेम में कहीं कोई स्वार्थ या मोह की भावना न थी। विशुद्ध प्रेम-कल्याण का भाव था।

एक दिन की बात है, दोनों बहनें घर पर थीं। भाई वहाँ से बहुत दूर अपने काम पर किसी दूसरे शहर में थे। अचानक अस्पताल से फोन आया—"यहाँ कोई ऐसा जख्मी आदमी पड़ा है, उसका मुख इस तरह कुचल गया है कि उसे पहचानना कठिन हो

रहा है, किंतु वह तुम्हारे पिता का नाम लेता है, इसलिए अस्पताल आकर फौरन पहचान कर लो।'

दोनों बहनें किसी अज्ञात भय से काँप उठीं। मन में भय समा गया, कहीं जैक या फ्रेड में से तो कोई नहीं है। जाने से पूर्व दोनों बहनों ने भगवान् से प्रार्थना की—"हे प्रभु ! ऐसा न हो कि वह हमारा भाई हो।" इसके बाद भरे आँसुओं से वह अस्पताल पहुँचीं। वहाँ जाकर पता चला कि वह उनके घर का नौकर था और वह किसी वाहन दुर्घटना में कुचल गया था। उनके पहुँचते-पहुँचते उसकी मृत्यु हो गई, पर दोनों बहनों को तब भी अपने भाइयों की बड़ी याद आती रही।

कहते हैं कि सच्चे हृदय की याद में इतनी शक्ति होती है कि वह एक हृदय का संदेश दूसरे हृदय तक बेतार के तार की तरह पहुँचा देती है। घर पहुँचे अभी दो ही क्षण मुश्किल से बीते होंगे कि जैक का फोन आया। उसने बताया—"मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम दोनों मुझे बुला रही हो, बताना तुम दोनों कुशलमंगल से तो हो !"

दोनों बहनें आश्चर्यचकित थीं कि उनकी अंतर्-वाणी जैक तक कैसे पहुँच गई ? उसकी तरफ से आश्वस्त बहनों के लिए अब फ्रेड का भी पत्र आया। उसने भी लिखा था—"मुझे कई दिन से ऐसा लग रहा है कि तुम दोनों मेरी याद कर रही हो—लिखना अच्छी तो हो।"

परोपकारी छात्रा—जेन एडम्स

समर्थ होते हुए भी किसी दुःखी अथवा आवश्यकता पीड़ित व्यक्ति की सहायता न करने वालों को क्या कहा जाएगा, और क्या कहना होगा—उन उपकारी आत्माओं को; जो अपने सारे साधन मनुष्य की मदद के लिए मुक्त कर देते हैं। अठारह वर्षीया छात्रा जेन एडम्स ऐसी ही महान् आत्माओं में से थी, जिसने दूसरों के दुःख दूर करने के लिए अपने घर के द्वार खोल दिये थे।

घटना १८८३ की है। अमेरिका के शिकागो शहर की छात्रा जेन एडम्स उस समय लंदन के एक कॉलेज में अध्ययन कर रही थी। वह छात्रावास में बहुधा कॉलेज से पैदल ही जाया करती थी। इसका कारण यह नहीं था कि उसके पास सवारी के लिए पैसों की कमी थी। वास्तविक कारण यह था कि वह रास्ते में दुःखी, असहाय एवं आवश्यकता पीड़ित व्यक्तियों को देखती और उनका दुःख-दर्द पूछती हुई जाया करती थी। उसे अपने इस कार्य से बड़ी आत्मिक सांत्वना मिला करती थी। उसका हृदय बड़ा कोमल तथा करुणापूर्ण था। वह दीन-दुःखियों की सहायिका बनकर अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहती थी। उसके नित्य का यह कार्यक्रम उस भविष्य की भूमिका थी, जिनमें वह जनसेवा करने का विचार किए हुए थी।

एक दिन उसने देखा कि एक बालक किताबों के अभाव में स्कूल न जाने के कारण बुरी तरह रो रहा है, उसने फुटपाथों पर पड़े असहाय रोगियों को रोते-कराहते देखा। उसने देखा कि बेरहम मालिक-मकान भाड़ा न चुका सकने की विवशता के कारण वर्षा से भीगी घोर जाड़ों की रात में किराएदार को धक्का देकर बाहर निकाल रहा है और सामान फेंक रहा है। उसने देखा कि शिक्षा के अभाव में उसके पड़ौस की स्त्रियाँ बुरी तरह लड़ती-झगड़ती और गाली-गलौज करती हैं, उसने ऐसे अपंग और अपाहिजों को भी देखा, जो दो दानों के लिए मुँह बाएँ दम तोड़ रहे हैं।

कुमारी जेन एडम्स के हृदय से एक आह निकल पड़ी और उसकी आत्मा कह उठी, "मानवता की यह दशा"। जेन ! जिनको तेरी सहायता की आज और अभी आवश्यकता है, उनको तू भविष्य के लिए टाल रही है। कल किसने देखा है। जो कुछ कर सकती है—इनके लिए, आज-अभी कर। कुमारी जेन एडम्स के इन छोटे-छोटे परोपकारी कार्यों की अंतर महानता ने उसे एक विख्यात समाज सेविनी बना दिया।

मानवेतर जीवों में भी करुणा और कर्तव्य भाव

नोआखाली में हिंदू-मुस्लिम दंगे के शिकार एक चौधरी परिवार के मकान में जब गाँधी जी गए, तो उन्होंने एक आश्चर्यजनक भयानक दृश्य देखा। इस विशाल मकान के बड़े आँगन में तीन नर-कंकाल पड़े हुए थे। चारों तरफ हड्डियाँ बिखरी हुई थीं। एक काला कुत्ता इन हड्डियों के बीच बैठा था। उसकी आँखें लाल थीं। उसको देखकर ऐसा मालूम हो रहा था कि उसने कई दिन से कुछ नहीं खाया। वह पागल जैसा मालूम हो रहा था। सब उसको देखकर डर गए। गाँधी जी को देखते ही वह उनके पास धीरे-धीरे आया। उस कुत्ते को इस मकान के लोग और गाँव वाले कालू कहकर पुकारते थे। जब कालू गाँधी जी के पास आया तो सब डर गए कि वह कहीं काट न ले।

किंतु गाँधी जी बिल्कुल विचलित न थे। कालू को अपनी ओर आते देखकर वह रुक गए। कालू उनके पैरों के पास माथा टेककर रो उठा। कुछ लोग उसको मारकर भगाने की चेष्टा करने लगे। किंतु गाँधी जी ने उनको ऐसा करने से रोक दिया। उन्होंने कालू के मस्तक पर हाथ लगाया और उसे पुचकार कर कहा—"कोई डरो मत। कुत्ता है तो क्या, यह भी तो आत्मा है, हमारी आपकी तरह इसमें भी समझ है।"

कालू जिस परिवार के साथ था, उस परिवार के आठ व्यक्ति नोआखाली के दंगों में इसी मकान में मारे गए थे। कालू शायद गाँधी जी को इस भयंकर नर-हत्या कांड की घटनाएँ दिखाने के लिए ही प्रतीक्षा कर रहा था।

कालू गाँधी जी को मार्ग दिखाने चलने लगा। गाँधी जी धीरे-धीरे उसके पीछे चलने लगे। उस विशाल मकान के एक-एक कमरे में कालू उनको ले जाता और चिल्लाकर रोता फिर मकान के बाहर बगीचे में वह गाँधी जी को ले गया। एक जगह वह रुक गया और अपने नाखून से उस स्थान को खोदने लगा। उस स्थान

को खोदने पर मकान के मालिक और चौधरी परिवार के मुखिया का मृत देह वहाँ से निकाला गया।

यह घटना हृदय-विदारक थी। उस विशाल मकान में जहाँ एक परिवार के आठ लोग रहते थे, आज केवल कालू ही अकेला बचा था। गुंडों द्वारा बनाए गए इस श्मशान में कालू की कहानी चिरस्मणीय रहेगी और लोगों को यह प्रेरणा देती रहेगी कि मानवेतर जीवों में भी बुद्धि, विवेक, ज्ञान और संवेदनशीलता होती है। वह भी आत्मा है, यह समझकर किसी भी जीव की हिंसा न करें।

तर्पण का अर्थ

गुरु नानक भ्रमण करते हुए हरिद्वार पहुँचे। कोई धार्मिक पर्व था, गंगातट पर भारी भीड़ थी। श्रद्धाकुल लोग आते और गंगा-स्नान करते। प्रातःकाल का समय था, गुरु ने सोचा स्नान और भजन के लिए इतना उपयुक्त स्थान कहाँ मिलेगा। वे भी गंगातट की ओर स्नान के लिए चल पड़े।

वहाँ जाकर देखते क्या हैं, एक व्यक्ति पूर्व की ओर जल उलीच रहा है। उसे देखकर दूसरे साथी ने भी अर्घ्य देना प्रारंभ कर दिया, तात्पर्य यह है कि जो भी स्नान के लिए आता वह तर्पण की बात न भूलता। गुरु नानक ने यह देखकर एक व्यक्ति से पूछा—"आप अभी यह क्या कर रहे थे ?" उस व्यक्ति ने कुछ रूखे और कुछ दर्प भाव से कहा—"कर क्या रहे थे—पितरों को तर्पण कर रहे थे।"

गुरु ने कपड़े उतारे, स्नान किया और पश्चिमाभिमुख खड़े होकर गंगा जी से बाहर पानी उलीचने लगे। पास ही खड़े लोगों को अटपटा-सा लगा। उन्होंने पूछा—"महाशय ! आप यह क्या कर रहे हैं, तर्पण पूर्वाभिमुख होकर किया जाता है या पश्चिम की ओर मुख करके। फिर तर्पण ऐसे तो नहीं किया जाता है, जैसे आप कर

रहे हैं।" यह दृश्य देखने के लिए तब तक काफी भीड़ इकट्ठी हो गई थी।

नानक ने मुस्कराकर उत्तर दिया—"भाइयो ! हमारे खेत पंजाब में हैं, उन्हें पानी दे रहा हूँ। खेत सूख रहे होंगे।"

पास खड़े हुए आदमी हँस पड़े, एक वृद्ध आदमी ने कहा—"गुरु जी, इतनी दूर यहाँ से पंजाब और वहाँ आपके खेत, भला पानी वहाँ कैसे पहुँच जाएगा ?"

अब गुरु की बारी थी। उन्होंने कहा—"भाइयो ! पितर लोक से तो दूर नहीं है, यदि आपका दिया पानी पितर लोक पहुँचकर पूर्वजों को संतोष दे सकता है, तो मेरा तर्पण पंजाब के खेतों में क्यों नहीं पहुँच सकता ?"

लोग स्तंभित थे, कुछ ठीक समझ नहीं पाए। पास ही एक बालक खड़ा था, उसने समझाया—"ठीक ही तो है—हम पितरों के प्रति श्रद्धा रखें, पर जो जीवित पितर माता-पिता, पड़ौसी और समाज के दूसरे पीड़ित लोग हैं, उनके प्रति भी तो अपनी श्रद्धा बनाए रहें। यदि इनके प्रति श्रद्धा और परोपकार का भाव नहीं रख सकते, तो उस तर्पण से ही क्या लाभ ?"

पुरुषार्थ की विजय

जहाँ अब पेरू, चिली और बोलिविया देश बसे हैं, वहाँ से दक्षिण अमेरिका तथा इक्वेडोर तक किसी समय एक आदिमवासी जाति इंका निवास करती थी। इंका आत्म-विश्वासी जीवन के लिए संसार में प्रसिद्ध है, आज भी इतिहास में उनकी तुलना समर्थ जातियों में की जाती है।

एक बार उनके राज्य में तेज तूफान आया। इंका लोग घास-फूँस और लकड़ी के मकानों में रहते थे। तूफान का वेग पूरे दिन और रात तक बना रहा, जिससे उनके सब मकान और सामान न जाने कहाँ उड़ गए ? जानवर यहाँ से वहाँ हो गए और सैकड़ों लोगों का पता न चला, वे कहाँ चले गए ?

होना यह चाहिए था कि अगले दिन से मकानों की टूट-फूट सँभालते, सामान ढूँढ़ते और जो कुछ हुआ था उस पर बैठकर शोक करते, पर इंका के सरदार ने कहा—"अब जो हुआ उसके लिए शोक करना व्यर्थ है। भाइयो ! अब ऐसा कुछ करना चाहिए, जिससे तूफान हमारा फिर कभी कुछ बिगाड़ न सके।"

फिर वे पत्थरों के औजारों से ही जुट पड़े और पत्थरों की शिलाएँ काट-काटकर भवन-निर्माण करने लगे। घोड़े, बैल और गाड़ियाँ कुछ भी तो नहीं थीं, पीठ से ढो-ढोकर ऐसी इमारतें गढ़ीं इंकाओं ने, जिनकी मजबूती देखते ही बनती। नगर के नगर तैयार कर दिए उन्होंने, उनके कला-कौशल को आज भी संसार का आठवाँ आश्चर्य माना जाता है।

फिर एक बार अकाल पड़ा। खेत खड़े सूख गए, पानी के स्रोत तो कहीं न कहीं से बने रहे, पर भुखमरी की स्थिति ऐसी थी कि पेड़ों की पत्तियाँ भी नहीं बचीं। दूसरी बैठक हुई, कुछ श्रद्धालु इंकाओं ने कहा—"सूर्यदेव की विनती करनी चाहिए, ताकि पानी बरसे और अकाल दूर हो (इंकाओं में सूर्य उपासना प्रचलित थी), पर इस बार भी अंतिम निर्णय वही लिया गया, जो एक समर्थ जाति को लेना चाहिए था।

इंकाओं ने पहाड़ काट-काटकर सीढ़ियाँ बनाईं और उनमें फल लगाए। पहाड़ों के चश्मों में पानी मिल जाता था, उससे सिंचाई कर करके उन्होंने संसार के अद्वितीय बाग तैयार कर दिए। उससे उन्हें इतने फल मिलने लगे कि अन्न के बिना वे वर्षों काम चला सकते थे।

भगवान् के प्रसन्न होने का रहस्य

दक्षिण कर्नाटक के बेलगाँव जिले की एक महिला संतान न होने के कारण बहुत दुःखी थी। भजन, पूजन, व्रत, उपवास—जिसने जो बताया, उसने बड़ी श्रद्धा से पूर्ण किए। फिर भी उसकी गोद सूनी की सूनी ही रही। अंत में उदास मन लेकर संतान पाने की

लालसा से वह चिदंबर दीक्षित के पास पहुँची। दीक्षित जी उद्भट विद्वान्, समाजसेवी और लोकोपकारी व्यक्ति थे। वह दूसरों के दुःख-दर्दों को अपना दुःख-दर्द समझकर दूर करने का भरसक प्रयत्न करते।

दीक्षित जी के पास बर्तन में कुछ भुने हुए चने रखे थे। उन्होंने उस महिला को अपने पास बुलाकर दो मुट्ठी चने दे दिए और कहा—"उस आसन पर बैठकर चबा लो। उस ओर कई बच्चे खेल रहे थे, छोटे-छोटे बच्चे, उन्हें अपने-पराए का ज्ञान कहाँ होता है ? वे भी खेल बंद करके उस महिला के पास आकर इस आशा में खड़े हो गए कि यह महिला शायद हमें भी खाने को देगी। पर वह तो मुँह फेरे अकेली ही चने खाती रही और बच्चे लालच की दृष्टि से टुकर-टुकर खड़े देखते रहे।

चने खत्म हो गए तो वह दीक्षित जी के पास पहुँची और बोली—"अब आप हमारे दुःख दूर करने के लिए भी कुछ उपाय बताइए।"

"देखो, देवी ! फोकट में मिले चनों में से तुम उन बच्चों को चार दाने भी नहीं दे सकी, जबकि एक बच्चा तो तुम्हारी ओर हाथ तक पसार रहा था। फिर भगवान् तुम्हें हाड़-मांस का बच्चा क्यों देने लगेंगे।"

उदार भगवान् से और भी अधिक उदारता पाने की आशा करने वालों को अपना स्वभाव और चरित्र अधिक उदार बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

आवारा आदमी

एक आवारा-सा आदमी कहीं जा रहा था। रास्ते में आम के बगीचे में होकर गुजरा, तो बगीचे के मालिक ने उससे कहा—"यदि तू चाहे तो बाग की रखवाली की नौकरी यहाँ कर सकता है।"

यह आदमी तैयार हो गया और बाग की रखवाली की नौकरी करने लगा। जैसी ईमानदारी, सावधानी और मेहनत से वह रखवाली करता, उससे मालिक भी बहुत संतुष्ट था।

मुद्दतें बीत गईं रखवाली करने वाले ने उसी काम में वर्षों गुजार दिए। अपनी झोंपड़ी में रहना, बताई हुई मजदूरी करना और भगवान् का भजन, बस यही उसकी नियत दिनचर्या बन गई।

एक दिन मालिक ने उस नौकर से कहा—कुछ मीठे आम तोड़कर लाओ। नौकर गया और कुछ बड़े-बड़े पके आम इकट्ठे करके ले आया। आम खट्टे निकले।

मालिक झल्लाया उसने कहा—"तुम्हें वर्षों यहाँ रहते हो गए, पर इतना भी नहीं जानते कि किस पेड़ के आम खट्टे और किसके मीठे हैं ?"

नौकर ने विनीत भाव से कहा—"मालिक ! मैं रखवाली वाला नौकर हूँ। किसी दूसरे को इसका एक फल भी चोरी नहीं करने देता, तो मैं स्वयं ही चोरी करके फल चखने लगूँ, यह कैसे हो सकता है ? इतने वर्षों में बगीचे का एक भी फल मैंने नहीं चखा, मालिक की बिना आज्ञा के यदि मैं वैसा करता तो वह चोरी ही होती।"

ऐसा अद्भुत ईमानदार नौकर उस मालिक ने न देखा था, न सुना था। धरती पर ऐसे देवता भी रहते हैं, ऐसा अनुमान तक उसने न किया था। मालिक ने नौकर को काम करने से छुट्टी दे दी और उसी बगीचे में संत के रूप में निवास करने का आग्रह किया।

दूसरे दिन बड़े तड़के ही नौकर वहाँ से विदा हो गया, जहाँ संत बनाकर पूजा की जाने लगेगी, वहाँ कोई व्यक्ति सचमुच संत न रह सकेगा, यह सोचकर वह आवारा आदमी नौकरी छोड़कर फिर पहले की तरह विचरण करने लगा। जहाँ-तहाँ लोगों पर अपने मनोभाव भी प्रकट करता, जिससे सुनने वाले बहुत प्रभावित होते।

यह आवारा आदमी अंत में महात्मा स्वामीजी के नाम से विख्यात हुआ।

स्त्रियाँ तो सभी साध्वी होती हैं

भादों की तीज। घर में सभी स्त्रियों की चहल-पहल, कोई पार्वती की स्तुति कर रही थी, तो दूसरी महिला आरती कर रही थी। देखा-देखी छोटी-छोटी कन्याएँ भी उस पूजा में सम्मिलित थीं। पर छोटे बच्चों को घर से बाहर निकाल दिया गया था।

छोटे बच्चों में श्री लोकमान्य तिलक का पोता भी था, वह पूजा में सम्मिलित होने के लिए बार-बार हठ करता रहा, इस पर महिलाओं ने उसे डाँटकर भगा दिया। पोते को यह बात अच्छी न लगी। वह सीधे श्री तिलक के पास जाकर शिकायत करने लगा—"बाबा ! मुझे माँ जी शिवजी की पूजा में सम्मिलित नहीं होने दे रहीं।"

श्री तिलक "केशरी" अखबार के संपादन के संबंध में कुछ चर्चा कर रहे थे। बातचीत बीच में ही रोककर—पोते को समझाते हुए बोले—"बेटा ! तुम्हें पूजा करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें प्रसाद चाहिए, वह मिल जाएगा।"

इस पर बच्चे ने कहा—"मुझे पूजा की आवश्यकता नहीं, तो फिर—काकी, बुआ, दीदी को पूजा करने की क्या आवश्यकता है ?"

श्री तिलक ने बच्चे की पीठ थपथपाते हुए कहा—"बेटा, आज की पूजा तो बालिकाएँ करती हैं, तभी तो तुम्हारी बहनें पूजा कर रही हैं। जानते नहीं, शंकर को पाने के लिए पार्वती ने पूजा की थी। उसी प्रकार योग्य पति प्राप्ति की लालसा से यह बालिकाएँ भी पूजा कर रही हैं। तुम्हें पति थोड़े ही चाहिए ?"

"तो क्या अच्छी पत्नी मुझे नहीं चाहिए।"

तिलक ने अपने पोते के सिर पर हाथ फिराते हुए बड़ी शांति से कहा, "तुम बहुत चतुर हो बेटा ! अपने देश में श्रेष्ठ पति प्राप्त

करने के लिए पार्वती को कठोर तप करना पड़ता है, पर स्त्रियाँ तो सभी साध्वी होती हैं, अतः अच्छी पत्नी पाने के लिए पूजा-पाठ नहीं करना पड़ता। हाँ, यदि पत्नी के प्रति सच्चा प्रेम प्रदर्शित करना हो तो बच्चों को गुणी और चरित्रवान् बनना चाहिए। तुम चाहो तो गुणों की पूजा कर सकते हो।"

बच्चा बहुत खुश हुआ और बोला, "अच्छा तो दादाजी—हम अब गुणों की पूजा करेंगे।"

जीव दया

बात गुजरात के छोटे-से गाँव की है, उस दिन सुबह ही सुबह वहाँ के एक सभ्रांत सज्जन की, राह चलते अहमदाबाद की एक सड़क पर ग्रामीण से भेंट हुई। वह ग्रामीण अपने कंधे पर लहू-लुहान कुत्ते को बिठाए धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। उन सज्जन पर न रहा गया। आखिर सहज भाव से पूछ ही बैठे—"क्यों, पटेल ! इस कुत्ते को कहाँ ले जा रहे हो ?"

"मेरे गाँव का यह आवारा कुत्ता है। किसी के घर में घुसकर कुछ नुकसान कर दिया होगा, सो इसकी इतनी पिटाई हुई कि रीढ़ की एक हड्डी टूट गई और घाव हुआ सो अलग। आप देख ही रहे हैं कि घावों से खून छलक रहा है। गाँव के दो-चार लोगों ने बताया कि यदि शहर के मवेशी अस्पताल में इसका इलाज कराया जाए तो अच्छा हो सकता है।

दो-तीन मोटर वालों से भी मिन्नतें करता रहा, पर उन्होंने भी मोटर में जगह न दी। अतः पैदल ही कंधे पर बिठाए, इसे यहाँ तक ले आया। यदि अच्छा हो गया तब तो ठीक है, अन्यथा भगवान् की मर्जी।" इस प्रकार पटेल ने सारी बात कह सुनाई।

वह सज्जन इलाज के लिए पटेल को दो-तीन रुपए भी देते रहे, पर उसने एक भी पैसा न लिया। वह घर से दो रुपए लेकर चला था। उसे बात करते काफी देर हो गई थी। कुत्ता भी कंधे पर

बैठा था। अतः नमस्कार किया और मवेशी अस्पताल की राह पूछकर चल दिया।

वे सज्जन उस पटेल को जाते हुए देखते रहे और तब तक खड़े रहे, जब तक वह उनकी आँखों से ओझल न हो गया। कभी उन्हें उस ग्रामीण में भगवान् बुद्ध की करुणा दिखाई देती और उस समय का दृश्य सामने घूमने लगता, जब यज्ञ मंडप में बलिदान के लिए आए मेमने की रक्षा उनके द्वारा की गई थी। थोड़ी ही देर में अब्राहम लिंकन का वह दृश्य दिखाई देने लगा, जब उन्होंने दलदल में फँसे एक सुअर को निकाला था और उन्हीं कपड़ों से धारा सभा के अधिवेशन में चले गए थे।

सूरमा बंदी नहीं बनाए जा सकते

फ्रांस और इंग्लैंड के बीच घमासान युद्ध हुआ। विजयश्री फ्रांस को मिली। युद्ध में अनेक सैनिक मारे गए और गिरफ्तार हुए। बंदी बनाए गए सैनिकों में एक चौदह वर्ष का किशोर भी था। यह बालक जेल में आने के दिन से ही बराबर भागने का प्रयत्न करता रहा, पर नैपोलियन के मुस्तैद सिपाहियों से बचकर निकल जाना संभव न हुआ।

एक दिन वह सारी रात सोया नहीं, पहरेदारों को तंग करता रहा, आखिर उसे सबेरे नैपोलियन के सामने पेश किया गया। नैपोलियन उसे देखकर हँसते हुए बोला—"नन्हे सैनिक ! मैं तुम्हारी इस वीरता के लिए बधाई देता हूँ, क्योंकि मेरी कैद से भागने का साहस करने वाले तुम प्रथम व्यक्ति हो। शायद तुम्हें यह नहीं मालूम कि आँखों में धूल झोंककर निकल भागने का क्या परिणाम हो सकता है ?"

गर्वीले स्वर में बालक ने कहा—"मृत्यु दंड।"

"पर मेरे छोटे दोस्त ! यह तो बताओ कि कैद से भागने का क्या कारण है ? जहाँ तक मैं समझता हूँ—मेरे यहाँ कैदखाने में किसी सैनिक के साथ अमानवीय व्यवहार तो किया नहीं जाता।"

"सम्राट् ! आप मेरे भागने का कारण समझ नहीं पाए हैं। मैं अपनी वृद्ध माँ का इकलौता बेटा हूँ। नित्य मजदूरी करता और उस मजदूरी से अपना तथा माँ का पेट पालता था। इसी बीच देश विपत्ति में फँस गया। सैनिकों की संख्या में कमी आ गई। उस समय हमारे देश में यह नियम बनाया गया कि राष्ट्र की सुरक्षा के लिए प्रत्येक घर से एक व्यक्ति को जाना चाहिए। मैं अपने घर में अकेला था, माँ तो जा नहीं सकती थी, अतः देश की पुकार को सुनकर मुझे युद्ध क्षेत्र में आना पड़ा। माँ को समझा-बुझाकर चला तो आया, पर अब न जाने उसकी क्या स्थिति होगी ? संयोग की बात है कि हमारे देश की सेना को हारना पड़ा और सभी को बंदी बनाया गया। अब मेरी दृष्टि उत्तर दिशा की ओर जाती है, तब मुझे माँ के प्रति अपने कर्तव्य याद आ जाते हैं। बस यही छोटा-सा कारण है मेरे भागने का; सम्राट् !"

बालक की देश भक्ति और वृद्धा माँ के प्रति कर्तव्यों को देखकर वीर नैपोलियन बड़ा प्रसन्न हुआ, उसने इस बालक को यह कहते हुए—जो लोग देश और जाति के प्रति इस तरह अनन्य सेवा भाव रखते हों, वह बंदी नहीं बनाए जा सकते—जेल मुक्त कर दिया।

विश्व-विजयी अंतर्पुरुष

सिकंदर सोने से पूर्व अपने गुरु का सत्संग किया करता था। वह स्वभाव उसके जीवन का अंग बन गया। उसके बिना उसे चैन न मिलता था। अरस्तू का आशीर्वाद ही उसका सर्वस्व था।

एक दिन सिकंदर ने देखा रात काफी बीत गई, पर गुरुदेव नहीं आए। बारह बजे रात्रि तक उसने अपलक प्रतीक्षा, की पर गुरुदेव की छाया भी दिखाई न दी। चिंतातुर सिकंदर ने अपने गुप्तचर चारों तरफ दौड़ाए, जिससे गुरु की खोज की जा सके। इससे भी संतुष्ट न हुआ, तो आप भी वेष बदलकर खोज में निकल पड़ा।

रात्रि के चौथे पहर हारा-थका सिकंदर एक तालाब के घाट पर जा पहुँचा। वह विश्राम के लिए बैठा ही था कि कहीं उसे बातचीत सुनाई दी। आवाज कुछ पहचानी-सी लगी, तो वह आगे बढ़ गया। दीपक का मंद प्रकाश, शांत-विनय मुद्रा में अरस्तू अपने गुरु संत सुकरात के समक्ष बैठे कुछ परामर्श कर रहे थे।

सुकरात कह रहे थे—"वत्स ! संग किसी का बुरा नहीं, आस्था प्रतिरोपित होकर बुराई-भलाई बनती है। राजा के प्रति आस्था होने से राजसी भोग, अहंकार, लिप्साएँ बढ़ती हैं। यदि किसी संत के प्रति श्रद्धा जाग्रत् हो जाती है, तो मन में ईश्वर-दर्शन की इच्छा और तप-त्याग के प्रति अनुराग जाग्रत् हो जाता है।"

"इसका तात्पर्य यह हुआ गुरुदेव कि, मनुष्य स्वयं कुछ नहीं, जैसी आस्था बन पड़े मनुष्य उसी में सीमित हो जाए।" अरस्तू ने शंका प्रकट की।

"नहीं, नहीं तात"—सुकरात ने अपना वक्ष स्थल ऊपर उठाते हुए कहा—"मनुष्य अपने आप में इतना क्षमतावान् है कि सारा कालप्रवाह, धरणि और आकाश उसकी भावना पर चलता है। यदि मनुष्य कुछ न करे, तो संपूर्ण प्रकृति जड़ हो जाए। देखो न, जो कुछ हलचल है। जो अपने अंदर सोये महापुरुष को जगा सकता है, वही विश्व-विजयी हो सकता है।"

सिकंदर ने इतना ही सुना। आज का सत्संग उसके शेष जीवन का आधार बना। चुपचाप उठा सिकंदर और विश्व-विजय के लिए निकल पड़ा।

करुणा ने बड़ा बनाया

विद्यालय का एक मेधावी पर निर्धन छात्र, छात्रवृत्ति की जितनी धनराशि मिलती उतने से गुजारा होना कठिन था। कभी समय पर फीस नहीं चुका पाता तो कभी रात्रि में पढ़ने के लिए प्रकाश की व्यवस्था न हो पाती, पर इन कठिनाइयों के सामने घुटने

टेकना उसने न सीखा था। कुछ ट्यूशन कर लिए, उससे गुजारा होने लगा।

एक दिन उसके मन में विचार आया कि मुझ जैसे निर्धन व्यक्तियों की इस दुनिया में कमी नहीं है। कितने ही छात्र आर्थिक तंगी के कारण पढ़ाई से वंचित रह जाते हैं और कितने ही रोगी समय पर औषधियाँ न मिलने के कारण अपना जीवन ही समाप्त कर देते हैं। उस विवेकशील छात्र ने प्रति माह छात्रवृत्ति और ट्यूशन से प्राप्त होने वाली आय से प्रति रुपया एक पैसा बचाना शुरू कर दिया, ताकि कभी आवश्यकता पड़ने पर किसी जरूरत मंद की सहायता की जा सके, इससे अधिक बचाना उसके लिए संभव भी न था।

वह छात्र एक होटल में खाना खाने जाता था, उसके संचालक थे नागोपंत। वे तपेदिक से बीमार पड़ गए, जैसे-तैसे कुछ दिनों तो उसकी व्यवस्था चलाते रहे, पर बीमारी बढ़ जाने के कारण मध्य सत्र में ही नागोपंत को होटल छोड़कर गाँव जाना पड़ा।

गर्मी की छुट्टियाँ थीं। परीक्षा के बाद उस छात्र ने नागोपंत के गाँव वालों से पूछकर उनका घर तलाश कर लिया। नागोपंत तो हर समय पलंग पर ही लेटे रहते थे, उनके लिए उठना भी कठिन था। उन्होंने उस समय छात्र को अपने सामने खड़े देखा तो बोले, "बेटा ! मुझे क्षमा करना बीच में ही होटल बंद कर देने से तुम्हें असुविधा अवश्य हुई होगी, पर मेरे सामने मजबूरी थी। हिसाब में तुम्हारे पाँच रुपए भी मुझ पर निकलते हैं। पर आज तो मेरी आर्थिक स्थिति इतनी खराब है कि मैं रुपए वापस नहीं कर सकता। तुम शायद अपने हिसाब के पैसे ही लेने आए होंगे।" उस बालक ने कहा, "नहीं पंत जी ! ऐसा आप क्यों सोचते हैं ? उधार की रकम मुझे प्राप्त हो गई, ऐसा आप समझ लीजिए। मैं तो आपकी विपत्ति में कुछ सहायता करने आया था।" यह कहकर उस बालक ने अपनी कई महीने की बचत के तीन रुपए नागोपंत के

सम्मुख रख दिए। नागोपंत के नेत्रों से आनंद के अश्रु बहने लगे, बालक की उदारता के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त किया। यह छोटी-सी सहायता नागोपंत के परिवार को डूबते के लिए तिनके के सहारे की तरह बड़ी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। इस बालक को आगे चलकर प्रसिद्ध समाज सुधारक कर्वे के रूप से जाना गया। उन्होंने अपना सारा जीवन दुःखी मानवता की सेवा में लगा दिया।

छोटे किंतु महान्

महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका में आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे। उन्हीं दिनों कुछ कार्यवश उन्हें लंदन जाना पड़ा। वहाँ भारत के अनेक नवयुवक शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। एक दिन उन नवयुवकों ने एक सभा करने का निश्चय किया, पर सभा की अध्यक्षता हेतु वे गाँधी जी के पास गए और अपने आने का उद्‌देश्य उन्हें समझाया।

सभा का कार्यक्रम बड़ा सादा था, पहले भोज और फिर सभा। गाँधी जी इस शर्त पर तैयार हो गए कि भोज में मांस और मदिरा का प्रयोग न किया जाए; आयोजनकर्ता सभी भारतीय थे, अतः वे गाँधी जी की शर्त मानने को तैयार हो गए।

सभी व्यक्तियों ने काम बाँट लिया और कोई बाजार से सामान लाने, कोई निमंत्रण-पत्र बाँटने, कोई सफाई करने और कोई खाना बनाने का उत्तरदायित्व लेकर अपने-अपने कार्य में लग गए। दोपहर के समय एक दुबला-पतला भारतीय आया और वह भी कार्य में जुट गया। उसने थालियाँ माँजने और सब्जी काटने का कार्य अपने जिम्मे लिया। कार्य करते शाम हो गई तब तक युवक संगठन के उप प्रधान ने आकर देखा कि दुबला-पतला आदमी भी बड़ी तन्मयता से काम में लगा हुआ है। वह उसके पास गए और कंधे पर हाथ रखकर कहा—गाँधी जी !

उप प्रधान के मुँह से यह उच्चारण सुनते ही नवयुवक दंग रह गए। क्या यह वही व्यक्ति है, जो थोड़ी देर बाद हमारी सभा की अध्यक्षता करने वाला है। कई युवकों ने गाँधी जी को कार्य

करने से रोका और अपनी भूल के लिए क्षमा माँगी। पर गाँधी जी ने कार्य बंद न किया। उन्होंने सब व्यक्तियों को अपने हाथ से परोसकर खाना खिलाया और उनके बर्तन साफ किए। अंत में स्वयं भोजन कर सभा की अध्यक्षता ग्रहण की और भाषण दिया।

गाँधी जी आज के उन अध्यक्षों से भिन्न थे, जो अपने कार्यक्रम में कभी भी समय पर उपस्थित नहीं होते।

नारी का त्याग

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई जब समस्त क्षमताएँ स्वाहा कर चुकी—किले की दीवारें टूटने लगीं—गिने-चुने सैनिक ही शेष रह गए—तब मंत्रणा हुई और यह निश्चय किया गया कि अब रानी को अन्यत्र चले जाना चाहिए; अन्यथा प्राण भी न रहेंगे, जिनके बल पर हम आगे भी अंग्रेजों से मुकाबला कर सकें। पर प्रश्न ये था कि यदि इसकी जरा भी सूचना अंग्रेज अधिकारियों तक पहुँच गई, तब रानी के पकड़े जाने की पूर्ण संभावना है। इसका उत्तरदायित्व लिया एक महिला सिपाही ने।

रानी को कुछ सैनिकों के साथ अंधेरे में कालपी की ओर भेज दिया गया। तभी वह महिला रानी का भेष बनाकर अंग्रेज छावनी में जा पहुँची। उसने कहा, "मैं हूँ झाँसी की रानी, मुझे गिरफ्तार करो" अंग्रेज अधिकारी स्तब्ध। रण चंडी यों समर्पण कैसे कर बैठी ?

आपस में विचार-विमर्श हुआ। स्त्री को कैद कर लिया गया। पहचानने वाले बुलाए गए। सब ने कहा हम नहीं जानते कुछ पर एक गद्दार भी था, जिसने यह बता दिया कि यह रानी नहीं है। वह तो भाग गई है शहर छोड़कर। इस पर स्त्री बहुत उत्तेजित हो उठी। शोर मचा डाला कि—"मैं ही झाँसी की रानी हूँ।" सबने कहा कि यह स्त्री पागल हो गई है।

अंग्रेज अधिकारियों ने वस्तु स्थिति की जाँच-पड़ताल करवाई। सत्य बात मालूम होने पर अंग्रेज सेनापति ने कहा था,

"यदि भारत की एक प्रतिशत महिलाएँ भी इस प्रकार की पागल हो जाएँ—तो हमें सात दिन के अंदर ही भारत छोड़कर चला जाना पड़ेगा।"

जब तक इधर यह कांड होता रहा, सब इसी में उलझे रहे और तब तक उधर रानी सुरक्षित रूप से कालपी पहुँच गई। यही उक्त स्त्री का उद्देश्य था, जो उसने प्राणों पर खेलकर पूरा किया। उसका नाम था झलकारी ! वह जाति की महतर थी, किंतु लक्ष्मी-बाई की महिला सेना की एक मुस्तैद सिपाही। सच्ची देश सेविका !

प्रेम घृणा से बढ़कर

सिकंदर जिस देश पर आक्रमण करने की तैयारी में था, उसी देश का राजा जब अपने सामने उपस्थित देखा, तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने सोचा कि यह हमारे सैन्य-बल से भयभीत हो आत्म-समर्पण हेतु आया है। अतः वह गर्व से फूल उठा, पर बातों ही बातों में उसने सिकंदर से कहा—"कृपया यह तो बताइए कि हमने आपका कोई अपकार तो किया नहीं, फिर हमारे राज्य पर आक्रमण की तैयारी कैसे कर दी ?"

अभिमान के नशे में चूर सिकंदर बोला—"तुम तो कायरों की तरह बातें करते हो, जाओ अब तुम्हारे राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे, पर कम से कम सात वर्ष तक तुम्हें कर देना होगा।"

"आप जैसे ऐश्वर्यशाली राजा के लिए थोड़े-से कर की शर्त शोभा नहीं देती। फिर इतनी कम धनराशि से आपका क्या बनता-बिगड़ता है ? क्या ही अच्छा हो कि हम दोनों मित्रता कर लें और अपनी प्रजा को सुख-शांतिमय जीवन व्यतीत करने दें।" राजा ने सिकंदर को समझाते हुए कहा।

सिकंदर, राजा की बात मान गया। अंत में राजा ने सिकंदर को अपनी संपूर्ण सेना सहित राज्य में प्रीतिभोज हेतु आमंत्रित किया। निश्चित समय सिकंदर सारी सेना सहित पहुँच गया। स्वागत के लिए वहाँ राजा, मंत्रीगण और समस्त सशस्त्र सैनिक

उपस्थित थे। सिकंदर अपनी सेना को चारों ओर से घिरा देख काँप उठा। उसे मित्रता के बीच विश्वासघात की गंध आने लगी।

राजा ने अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा—"सिकंदर ! मैं सेना की छोटी-सी टुकड़ी को लेकर आप सबका स्वागत करने आया था। वैभवशाली सम्राट् का स्वागत भी तो उसी स्तर का होना चाहिए था। शायद आपको यह शंका है कि मैंने सैन्य दुर्बलता के कारण आपसे मैत्री की, पर इस विचार को आप भूल जाइए। मुझे व्यर्थ में ही लोगों का खून बहाना पसंद नहीं है और न अब ही मैं युद्ध की इच्छा से यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। हम सब आपकी अगवानी करने आए हैं। हमारा विश्वास शांति और प्रेम में है, घृणा और युद्ध में नहीं।" इतना सुनकर सिकंदर का सिर लज्जा से झुक गया।

व्रत-पालन में दृढ़ता

देवदास की आयु तब केवल तेरह वर्ष की थी। वह जब तक बापू को उपवास करते देखते रहते थे। देवदास के मन में आया कि जब बापू लंबे-लंबे व्रत कर लेते हैं, तो एक बार मैं भी छोटा-सा व्रत करके देखूँ। एक दिन उन्होंने बड़े उत्साह से कहा—"बापू ! एक सप्ताह तक बिना नमक का भोजन मैं भी करूँगा।"

प्रारंभ का जोश, तीन दिन तो जैसे-तैसे निकल गए, चौथे दिन देवदास को नमक वाले शाक खाने की इच्छा हुई। उस दिन सबके लिए बापू ही खाना परोस रहे थे। देवदास ने बापू से नमक वाला शाक माँगा तो उन्होंने मना कर दिया। पर उस दिन तो बालक देवदास जिद ही करने लगे, जब तक नमक वाला शाक न मिलेगा मैं भोजन न करूँगा।"

"तुमसे किसी ने अपना व्रत रखने के लिए तो कहा नहीं था, अपनी इच्छा से ही तो इसे स्वीकार किया है। ऐसी स्थिति में तुम्हें नमक वाला शाक न खाना चाहिए। यदि तुम एक सप्ताह का व्रत पालन नहीं कर सकते थे, तो व्रत लेना ही नहीं चाहिए था।"

जिद के कारण देवदास ने खाना नहीं खाया और भूखे ही उठ गए। उस समय बापू ने भी खाना नहीं खाया और यही कहा—"देख देवदास ! जब तू स्वयं आकर कहेगा कि मैं बिना नमक का भोजन करूँगा, तभी मैं भोजन करूँगा अन्यथा तेरे साथ मैं भी भूखा रहूँगा।" उस दिन पिता, पुत्र दोनों ही भूखे रहे। एक ओर बालक की जिद थी और दूसरी ओर नियम पालन कराने की दृढ़ता।

शाम हुई। देवदास ने आकर कहा, "बापू ! आप मेरी वजह से क्यों भूखे हैं ? चलिए भोजन करें, सुबह अपनी जिद से जो व्रत तोड़ने की बात मैं कह रहा था उसके लिए क्षमा करिए। अब मैं भी बिना नमक का भोजन करूँगा।"

शाम को पिता-पुत्र दोनों ने ही बड़े प्रेमपूर्वक साथ-साथ खाना खाया।

कविता ही नहीं—उदारता भी

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदू विश्वविद्यालय के महिला कॉलेज में अध्यापक थे और चंद्रशेखर पांडेय बी० ए० के विद्यार्थी। बाबू श्यामसुंदर के द्वारा पांडेय जी का हरिऔध से अच्छा परिचय हो गया था। जब कभी अवकाश मिलता पांडेय जी हरिऔध के घर भी चले जाते थे।

एक दिन उन्होंने कहा—"चंद्रशेखर ! मेरे 'चोखे-चौपदे' काफी तैयार हो गए हैं; थोड़ा-सा समय निकालकर उनकी प्रतिलिपि कर सको, तो मुझे प्रकाशन हेतु प्रेस में देने में सुविधा होगी। तुम जो पारिश्रमिक चाहोगे दे दिया करूँगा।"

बात पारिश्रमिक की थी अतः बड़े संकोच के साथ हरिऔध की बात उन्होंने स्वीकार कर ली और प्रतिदिन दो घंटे का समय लिखने में लगाने लगे। पांडेय जी का पूरा परिवार भी काशी में ही रहता था, जिसके पालन-पोषण का पूरा भार इन्हीं के कंधों पर था। एक दिन उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी बिगड़ी कि खर्च के लिए पास

में एक भी पैसा न रहा। हरिऔध जी को वह नित्य आने का आश्वासन दे आए थे अतः गए तो समय पर ही, पर बड़े उदास मन से। हरिऔध जी के सम्मुख वे उदासी का भाव न छिपा सके। आखिर बहुत पूछने पर उन्हें अपनी सारी स्थिति बतानी ही पड़ी।

हरिऔध जी ने अपनी जेब से २५ रुपए के नोट निकालते हुए उनकी ओर बढ़ा दिए और कहा—"चंद्रशेखर ! पहले घर की व्यवस्था कर आओ फिर यहाँ के काम में हाथ लगाना। अरे भाई यदि मेरे चौपदे किसी दो पदे (मनुष्य) की थोड़ी-सी कठिनाई भी दूर नहीं कर सकते, तो मैं इन्हें 'चोखे' किस बल पर कह सकूँगा" और चंद्रशेखर को बिना इच्छा के रुपए लेकर घर जाना ही पड़ा।

ऐसी थी महाकवि हरिऔध की उदारता, जिसके स्मरण मात्र से मस्तक नत हो जाता है।

सच्चाई जानने के लिए सूक्ष्म बुद्धि आवश्यक

जब सारे देश में अंग्रेजों का बनाया हुआ कानून तेजी से प्रचलित होता जा रहा था ? तब भी नागौर के राजा बखत सिंह ने कानून से न्याय की अपेक्षा सच्चाई से ही न्याय करने का नियम रखा, इसके लिए उन्हें कई बार बहुत सोचना पड़ जाता था।

एक बार जयपुर महाराज ने उनकी परीक्षा के लिए दो सैनिक भेजे। प्रस्तावित योजना के अनुसार दोनों सैनिक नागौर पहुँचे और एक हलवाई की दुकान के पास सबेरे से ही जा बैठे। वह बड़े ध्यान से देखते रहे कि कौन ग्राहक कितने की मिठाई खरीदता है ? शाम तक की सारी बिक्री का हिसाब उन्होंने लगा लिया। जब हलवाई अपने घर चलने लगा, तो दोनों छद्म वेषधारी सैनिकों ने चिल्लाना आरंभ किया—यह व्यक्ति हमारे पैसे चुराकर लिए जा रहा है। नागौर के सिपाहियों ने हलवाई को पकड़कर पूछा इसमें कितने रुपए हैं ? बेचारा हलवाई बता नहीं सका, जबकि उन दोनों ने रुपयों की निश्चित संख्या बता दी। सिपाहियों ने पहले तो धन हलवाई से लेकर उन दोनों को देना चाहा, पर उन्हें याद

आया—राजा का आदेश कि न्याय के लिए सचाई की तह तक पहुँचना आवश्यक है, इस विचार के आते ही मामला बखत सिंह के पास भेज दिया गया।

श्री बखत सिंह ने दोनों पक्ष के लोगों को ध्यान से देखा दोनों की बातें सुनीं, इसके बाद अपने सैनिकों को सभा भवन में ही पानी गर्म करने की आज्ञा दी। पानी खौलने लगा तो सारे सिक्के उसमें पटक दिए। बख्ता सिंह ने खौलते हुए पानी को देखा और रुपए निकलवाकर हलवाई को दे दिए। इस पर सारे दरबार के लोग आश्चर्यचकित हो गए। प्रधानमंत्री ने पूछा—"महाराज ! लोग जानना चाहते हैं कि यह न्याय किस आधार पर किया गया ?" बखत सिंह हँसे और बोले—इतना भी नहीं समझे। खौलते पानी में सिक्के डालते ही ऊपर घी फैल गया। हलवाई दिन भर सौदा करता है, तो हाथ का घी सिक्कों में लगता है, इसी से पता चल गया कि यह धन हलवाई का ही था, भले ही उसे उसकी निश्चित संख्या का पता न था।

सैनिकों ने महाराज की दूरदर्शिता को बहुत सराहा और माना कि न्याय के लिए कानूनी दलीलें ही काफी नहीं।

आत्म विश्वास से अदृश्य दर्शन

न्यूयार्क में एडवर्ड ऐनिस नामक एक व्यक्ति रहता था। वह धर्म-कर्म और ईश्वर में बहुत विश्वास रखता था, पर अपने अनेक संबंधियों में सबसे अधिक निर्धन वही था, तो भी वह इतना आत्मविश्वासी था कि इसी एक गुण के कारण उसका सभी सम्मान करते थे।

निर्धनता की अवस्था में काफी समय बीत गया। एक दिन वह किसी स्थान के पास से गुजर रहा था, तो उसे ऐसा आभास हुआ, इस स्थान पर काफी मात्रा में सोना विद्यमान है। उसने एक ज्योतिषी से भी पूछा, उसने भी पुष्टि कर दी, पर उसने प्रमुखता अपने विश्वास को ही दी। वह प्रायः कहा करता था—"मेरा हृदय,

मन और मेरी आत्मा इतने निष्कलुष और विकाररहित हैं कि उनमें भविष्य के संदर्भ भी ऐसे प्रकट हो जाते हैं, जैसे उन्हें मैं सचमुच देख रहा हूँ। जब मेरा विश्वास दृढ़ हो जाता है, तो फिर उस कार्य की सफलता में कुछ संदेह भी नहीं रह जाता।

ऐनिस के पास धन नहीं था तो भी उसने अपने तमाम साधन एकत्रित करके कुछ मित्रों से सहायता प्राप्त करके वह जमीन खरीद ली और वहाँ खुदाई प्रारंभ कर दी। किंतु कि हाइलैंड मेरी में कुछ चाँदी के टुकड़े ही उपलब्ध हुए और उसके बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। मरने से पूर्व अपने एक संदेह में एनिस ने कहा—"जो बात आत्मा से निकलती है, वह कभी झूँठ नहीं होती। मुझे नहीं मिला तो क्या, अभी उस स्थान पर सोना है अवश्य।"

मृत्यु के १६ वर्ष बाद श्रीमती मार्था मारले ने, जिन्हें ऐनिस के आत्म-विश्वास पर भारी भरोसा था, फिर से खुदाई का काम जारी करवाया। ६०० फीट तक खुदाई करने के बाद वहाँ सोने, चाँदी, ताँबे और जिंक के भंडार मिले। इससे उस महिला को कई लाख डॉलर का लाभ हुआ।

अपनी सफलता पर उन्होंने केवल इतनी ही टिप्पणी की—"आत्म-विश्वास अपने आप एक ज्योतिष है, ऐसा मनुष्य भले ही अपने लिए कुछ न करे, पर उसकी विकसित अंतर्-शक्ति अनेक दूसरों का भी कल्याण कर सकती है।"

देवताओं से भी उच्च

द्वितीय महायुद्ध का समय था। फार्मेडेबिल नामक अंग्रेजी जहाज समुद्र में बड़ी तेजी से चला जा रहा था। जहाज में पचासों व्यक्ति थे। एकाएक जोर का धड़ाका हुआ। मालूम हुआ कि जर्मन पनडुब्बी ने एक मित्र जहाज को फोड़ दिया है। धीरे-धीरे जहाज में पानी भरने लगा। इत्तफाक से बचाने वाली नाव केवल एक ही थी। उस पर केवल १२ व्यक्ति ही जा सकते थे। प्रश्न था, कौन जाए ? कौन रहे ? निर्णय किया गया कि १२ नामों की पर्चियाँ छाँट ली

जाएँ। ऐसा ही हुआ। उन बारह व्यक्तियों में एक सहृदय मल्लाह का भी नाम था। मौत पानी बनकर जहाज में ऊपर उठती चली आ रही थी। शीघ्रता की जा रही थी नाव छोड़ने में। उस मल्लाह का एक साथी जिसे जहाज के साथ ही डूब जाना था—उसके नेत्रों में सहसा समुद्र-सा ही खारा जल भर आया। जाने वाले मल्लाह ने पूछा—"यह आँसू कैसे दोस्त ! सिपाही तो मौत को भी दुल्हन बनाकर हँस दिया करते हैं ?" उसके साथी ने उत्तर दिया, "मैं मरने से नहीं डरता, उसके लिए कोई गम नहीं, अपने माता-पिता का ख्याल आ गया। मेरे मरने की खबर पाकर उन पर क्या गुजरेगी ?"

वह सहृदय मल्लाह नाव पर चढ़ते-चढ़ते एक क्षण को रुका। समय बहुत ही कम था। उसकी आत्मा ने कहा—"यही समय है, एक माँ की ममता का खून होने से तू रोक सकता है। एक पिता की आशाओं के सहारे की तू रक्षा कर सकता है।" उसने निर्णय कर लिया कि क्या करना चाहिए ? उसने अपने मित्र के कंधे पर हाथ रखा और कहा—"तुमने ठीक कहा, मित्र ! सिपाही भला कब मौत की परवाह करते हैं ? देखो, मेरी एक बात मानो। मेरे माता-पिता नहीं हैं। इसलिए मेरे मरने से किसी को दुःख न होगा। अतः तुम मेरी जगह नाव पर चले जाओ और मैं जहाज पर जाता हूँ" और वह देवताओं से भी उच्च आत्मा समुद्र में जहाज के साथ ही सशरीर डूब गई।

कर्मफल अमान्य क्यों करूँ ?

श्री रामकृष्ण परमहंस के गले में नासूर हो गया था। इसी समय शशिधर चूड़ामणि उनके पास आए और बोले—"स्वामी जी ! यदि आप अपने मन को एकाग्र करके कहें कि 'रोग चला जा, रोग चला जा' तो आपका रोग अवश्य मिट जाएगा।"

परमहंस बोले—"जो हृदय मुझे सच्चिदानंद माँ का स्मरण करने हेतु मिला है, उसे मैं सांसारिक कार्य में क्यों लगाऊँ ?" इस

पर अनेक शिष्यों को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने मिल-जुलकर आग्रह किया, कि आप माँ ही से कहें कि वह आपको रोग-मुक्त कर दें।

इस पर रामकृष्ण परमहंस मुस्कराकर बोले—"मैं ऐसी मूर्खता क्यों करूँ ? माँ तो दयामयी, सर्वज्ञ और सर्व-समर्थ हैं। उन्हें मेरे कल्याण के लिए जो उचित लगा, वही किया, फिर मैं उनकी व्यवस्था में छिछलापन क्यों लाऊँ ? अपना ओछापन क्यों बताऊँ ?"

यह भी और वह भी

किसी ने विनोवा जी से पूछा—"आप महाराष्ट्रीय ब्राह्मण हैं ? कोकणस्थ हैं या देशस्थ ?" उन्होंने कहा—"मैं देश में रहता हूँ, इसलिए देशस्थ हूँ। काया में रहता हूँ, इसलिए कायस्थ हूँ और सबसे आखिर में मैं 'स्वस्थ' हूँ, तो सब कुछ हूँ। ऐसा ही आप मुझसे क्यों पूछते हैं ? मैं हिंदू हूँ, इसलिए मुसलमान नहीं हूँ, ऐसा नहीं। मैं हिंदुस्तान में रहता हूँ, इसलिए तुर्किस्तान में नहीं हूँ, ऐसा नहीं है हरिजन आश्रम में हूँ, इसलिए अहमदाबाद व गुजरात में नहीं हूँ, ऐसा नहीं है।"

"धर्म में व्यापक वृत्ति होती है, संप्रदाय संकीर्ण होता है। हम कह चुके हैं कि विचार जब मिट जाता है, तो उसका संप्रदाय बन जाता है। धर्म में संकीर्णता से ही संप्रदायों में संघर्ष होता है, धर्म-संघर्ष के लिए नहीं है। मनुष्य से मनुष्य को मिलाने के लिए है।"

विनोवा जी एक सभा में भाषण देते हुए बोले

एक बार भगवान् कृष्ण से भेंट करने उद्धव गए। उद्धव और माधव दोनों बचपन से दोस्त थे। द्वारपाल ने कहा—"इस समय भगवान् पूजा में बैठे हैं, इसलिए अभी थोड़ी देर आपको ठहरना होगा।" समाचार पाते ही भगवान् शीघ्र पूजा कार्य से निवृत्त होकर उद्धव से मिलने आए। कुशल प्रश्न के बाद भगवान् ने पूछा—"उद्धव ! तुम किसलिए आए हो ?"

उद्धव ने कहा—"यह तो बाद में बताऊँगा, पहले मुझे बतलाएँ कि आप पूजा किसकी कर रहे थे ?" भगवान् कहा—"उद्धव, तुम यह नहीं समझ सकते।" लेकिन उद्धव क मानने वाले थे, उन्होंने जिद्द की। तब भगवान् ने कहा—"उद्धव तुझे क्या बताऊँ, मैं तेरी ही पूजा कर रहा था।"

"उद्धव माधव की पूजा करता है और माधव उद्धव की पूजा करता है। भगवान् भक्त की पूजा करते हैं और आप भगवान् की इस आदर्श से भगवान् बताना चाहते हैं कि "जो मालिक है, मजदूरों के सेवक बनें, जो शासक हैं, वे प्रजा के सेवक बनें, शिक्षक विद्यार्थियों के सेवक बनें, माता-पिता अपनी संतान के सेवक बनें, उद्योगपति श्रमिकों के सेवक बनें, जिस किसी को जिम्मेदारी का काम मिला है, वे सब सेवक बनकर काम करेंगे तो दुनिया के सारे झगड़े मिट जाएँगे।"

मृत्यु के लिए तैयार हूँ

तुर्कों ने कोशूद को कैद कर लिया। जेल में पड़े कोशूद के सामने शर्त रखी गई यदि—आप इस्लाम स्वीकार कर लें, तो आपको मुक्त किया जा सकता है।

कोशूद ने विचार किया और हँसकर उत्तर दिया—"मृत्यु और लज्जा इन दोनों में से किसे स्वीकार किया जाए, आज तक मेरे सामने ऐसी उलझन नहीं पड़ी। मृत्यु जीवन का अनिवार्य रूप है, तो फिर उससे डरकर अपना सिर क्यों नीचा करूँ ? जब मेरे पास सब कुछ था, तब मैंने अपना धर्म न बदला, आज केवल वही मेरा साथी है तो मैं उसे कैसे छोड़ दूँ ? ईश्वर की आज्ञा पूरी करो। मरने के लिए तैयार हूँ, कलंक लगाने के लिए नहीं।"

देश सेवा नहीं छोड़ी

देश उन दिनों स्वतंत्र नहीं हुआ। डॉ० राजेंद्र प्रसाद परिवार के सारे उत्तरदायित्वों को अपने बड़े भाई श्री महेंद्र प्रसाद पर डालकर देश सेवा में लगे हुए थे। यद्यपि राजेंद्र बाबू के वकालत

छोड़कर असहयोग आंदोलन में भाग लेने से पारिवारिक स्थिति बिगड़ने लगी थी, पर उनके बड़े भाई ने उसे प्रकट करके उनकी चिंता बढ़ाना उचित नहीं समझा।

अचानक उनके बड़े भाई का स्वर्गवास हो गया। पिता तुल्य भाई की मृत्यु ने परिवार की सारी व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया। परिवार की आर्थिक स्थिति के बारे में राजेंद्र बाबू को तो कुछ पता नहीं था, क्योंकि सारी व्यवस्था उनके बड़े भाई ही करते थे। फिर भी परिवार से संबंधित विशेष व्यक्तियों को बुलाया गया। महाजनों से पूछताछ की। कुछ ऋण के कागजात मिल गये, जिनसे हिसाब लगाया गया, तो उनकी आँखों के सामने तितलियाँ नाचने लगीं। पर बाबू जी ने बड़े धैर्य तथा साहस से काम लिया। सेठ जमुनालाल बजाज के परामर्श से १५, १६ महीने में अपनी तीन-चौथाई संपत्ति बेचकर लगभग दो तिहाई ऋण चुका दिया गया। किसी को अदालत में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। काफी पैसा बिना लिखा-पढ़ी का था, जिसे भी बाबू जी ने स्वीकार किया। बची हुई संपत्ति जमुनालाल जी को जमानत दे दी गई, उसी की थोड़ी-बहुत आय तथा पुराने शाल-दोशाले बेचकर जैसे-तैसे परिवार का खर्चा चलाया जाता रहा। लगभग १४ वर्षों में ब्याज सहित सारा ऋण चुका दिया गया। ऐसी कठिनाई के बीच भी राह निकालकर वे देश सेवा का कार्य भी करते रहे और पारिवारिक कर्तव्यों के प्रति भी सजग रहे।

अनेक व्यक्ति तो व्यापार में घाटा होने अथवा अन्य किसी प्रकार की आर्थिक हानि हो जाने पर मन का संतुलन खोकर आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाते हैं। उन्हें अपने कर्तव्यों का इतना भी भान नहीं रहता कि उनकी मृत्यु के बाद परिवार का पालन-पोषण कैसे होगा ? जिससे पहले ऋण ले चुके हैं, उसका हिसाब कौन करेगा ? बिना कुछ आगा-पीछा सोचे परिवार के सदस्यों के लिए एक संकट उत्पन्न कर देते हैं, पर राजेंद्र बाबू

लाखों रुपए के कर्जदार होने पर भी कठिनाइयों के मध्य विचलित नहीं हुए वरन् देश सेवा का प्रमुख कार्य भी करते रहे।

आपका अधिकार

गुजरात के मस्त कवि श्री बाला शंकर कंथारिया की आर्थिक स्थिति जब खराब हो गई और परिवार का गुजारा कठिन हो गया तो उन्होंने अपना निजी मकान माणिकलाल के हाथ बेच दिया। कुछ दिनों के बाद उस मकान को गिरवाकर माणिकलाल ने नये सिरे से उसे बनवाना शुरू किया। मकान की खुदाई हो रही थी, उसमें मस्त कवि के पूर्वजों द्वारा गढ़ा हुआ धन प्राप्त हुआ, धन इतना अधिक था कि उससे पूरा मकान बनवाया जा सकता था। पर माणिकलाल ने सोचा कि मैंने तो केवल मकान खरीदा है, इस जमीन में गढ़े धन का तो मुझे पता ही नहीं था; फिर नैतिक रूप से इस पर मस्त कवि का ही अधिकार होना चाहिए।

माणिकलाल वह धन लेकर मस्त कवि के घर पहुँचे और उन्हें सौंपते हुए बोले, "यह धन आपका है। जमीन की खुदाई के समय मुझे प्राप्त हुआ था।"

मस्त कवि बोले, "भाई ! मैं तो मकान आपके हाथों बेच चुका। अतः उसमें जो कुछ भी निकले उस पर आपका ही अधिकार है। मैं उसमें से कुछ भी लेने वाला नहीं हूँ।"

गुरु का सम्मान

कवि इकबाल को अरबी, फारसी का विद्वान् बनाने का श्रेय उनके गुरु मौलवी मीर हसन को था। इकबाल में शायरी के प्रति रुचि जाग्रत् करने वाले भी यही मौलवी साहब थे। अतः अपने गुरु के प्रति इकबाल जीवन भर श्रद्धा व्यक्त करते रहे।

एक बार अंग्रेजी सरकार ने प्रसन्न होकर इकबाल को 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया। इकबाल ने वह उपाधि लेने से इनकार करते हुए कहा—"जब तक मेरे गुरु का सम्मान नहीं किया जाता, तब तक मैं किसी भी उपाधि को ग्रहण करने का अधिकारी

नहीं हूँ, क्योंकि आज की स्थिति तक पहुँचाने वाले तो मेरे गुरु ही हैं।"

इकबाल की शर्त मंजूर कर ली गई। पहले उनके उस्ताद मीरहसन को 'शम्सउल-उलेमा' का खिताब दिया गया और बाद को इकबाल ने उपाधि धारण की।

आज जब शिष्यों द्वारा गुरुओं का घेराव किया जा रहा हो और उनकी बात को उपहास के रूप में माना जा रहा हो, उस समय यह घटना प्रकाश की एक किरण के समान दोनों को अपने संबंध सुधारने के लिए प्रेरणा प्रदान कर रही है।

हुमायूँ, शाबाश !

हुमायूँ शेरशाह से परास्त हो गया, मन का क्षोभ हल्का करने के विचार से वह गुरु अंगद देव के पास गया। 'गुरु' अंगद देव उस समय ध्यान मग्न थे, अतः हुमायूँ के आने का उन्हें पता न लगा। हार से क्षुब्ध हुमायूँ ने इसे अपनी उपेक्षा समझी। क्रोध में आकर तलवार निकालकर उन्हें मारने को सन्नद्ध हुआ, किंतु गुरुजी के तेजस्वी मुख मंडल पर दृष्टि पड़ते ही दिल काँप गया और हाथ से तलवार छूट पड़ी। आवाज सुनकर गुरुजी ने धीरे से नेत्र खोले। पलक मारते घटना का विश्लेषण कर लिया। सौम्य मुस्कुराहट के साथ बोले—"शाबाश हुमायूँ युद्ध में हारकर अपने शौर्य प्रदर्शन के लिए अच्छा स्थान चुना। संतों पर तलवार चलाकर अपनी संतुष्टि करना चाहता है ?" हुमायूँ शर्म से गड़ गया। संत की पग-धूलि तथा आशीर्वाद लेकर पुनः चल पड़ा अपने अभियान को पूरा करने।

अविचल निष्ठा

वृद्धावस्था तक लकवे की बीमारी के कारण श्री राजनारायण बसु राजगृहों में ही रहने लगे। अब उनका बाहर जाना बिल्कुल ही बंद हो गया। उनके परम-प्रिय शिष्य बाबू अश्विनीकुमार को इस बात का पता चला कि गुरुदेव बीमार हैं,

तो वे तुरंत उनके दर्शनों के लिए चल पड़े। अश्विनी बाबू कमरे में प्रवेश करते हुए काफी गंभीर हो गए। दुःख भरे स्वर में उन्होंने गुरुदेव को प्रणाम किया और आशीर्वाद पाकर समीप ही चारपाई पर बैठ गए।

थोड़ी ही देर में बातचीत का सिलसिला चल पड़ा। राजनारायण बसु ने अपने मार्मिक उपदेश शुरू किए। भगवद्गीता तथा उपनिषदों के श्लोक, वर्ड्सवर्थ, शेली, बायरन तथा हाफिज आदि संत पुरुषों की सम्मतियाँ वे इस प्रकार देने लगे, मानो वे पूर्ण स्वस्थ हों, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो। यह देखकर अश्विनीकुमार ने पूछा—"भगवान् आपने तो ईश्वर की बड़ी उपासना की, फिर भी वह आपको कष्ट दे रहा है—मैं देख रहा हूँ कि आप इस पर भी उसी ईश्वर के गुण गाये जा रहे हैं।" राजनारायण बसु बोले—"अश्विनी ! तू उन्हें दोष न दे। थोड़े दिन यह शारीरिक कष्ट मिले भी तो उससे मेरा क्या बिगड़ जाएगा ? रोग-शैय्या पर पड़ा और भी निश्चिंत भाव से भजन कर सकूँगा, पर क्या तुम यह भूल रहे हो कि मैंने उन्हीं की कृपा से जीवन में कितने ही सुंदर दृश्य देखे और अनेक सुख उठाए हैं।" गुरुदेव की यह अविचल निष्ठा देखकर अश्विनी बाबू आगे कुछ न बोल सके।

पुत्र और परमेश्वर

बिनोवा के पिता सहृदय व्यक्ति थे। वे प्रायः असहाय बच्चों को ले आया करते थे। उन बच्चों की घर में वैसी ही खातिरदारी की जाती थी जैसे घर के सगे बच्चों के साथ। एक बार ऐसा ही एक लड़का घर में रह रहा था। सेवा-सत्कार का सारा भार बिनोवा जी की माताजी पर था। कभी-कभी दोपहर की रोटी बच जाती, तो वह बिनोवा को दी जाती, उस बच्चे को नहीं। बिनोवा ने एक दिन अपनी माता से कहा—"अभी तो तेरा भेदभाव मिटा नहीं, मुझे बासी रोटी देती है और उस लड़के को ताजी।" बिनोवा की माता जी ने बड़ा मार्मिक जवाब दिया। कहने

लगी—"यह मुझे परमेश्वर स्वरूप दीखता है, तू पुत्र स्वरूप दीखता है। तुझमें मेरी आसक्ति है, इसलिए पक्षपात तो होगा ही। जब तू भी परमेश्वर हो जाएगा तो यह भेदभाव अपने आप बंद हो जाएगा।"

अपना-अपना कर्तव्य

"माँ ! मुझे बड़े भाई ने मारा है।"—रोते हुए गाँधी जी ने अपनी माता से शिकायत की। तब उनका बचपन था। माँ ने प्यार से बापू के सिर पर हाथ फेरा और कहने लगी—"मैं क्या करूँ बेटा ! तू भी उसे मार।" गाँधी जी बिगड़कर बोले—"स्वयं तो मारने वाले को रोकती नहीं और मुझे भी मारने की शिक्षा देती हैं। तू ही बता, क्या मुझे बड़े पर हाथ उठाना चाहिए ? माता जी बड़ी लज्जित हुई, उन्होंने गाँधी जी के कथन की यथार्थता को अनुभव किया।"

बड़े का बड़प्पन

जुटफेन की रणभूमि में घोर युद्ध करते हुए फौज के प्रधान अफसर सर फिलिप सिडनी बुरी तरह घायल हुए। वे युद्ध में बहादुरी से लड़ रहे थे कि दुश्मन की एक गोली उनकी जाँघ में आकर लगी, जिससे वहाँ की हड्डी के दो टुकड़े हो गए। घोड़े को लौटाकर वे अपने कैंप में आए। घाव में से खून इतनी तेजी से निकल रहा था कि उनके बचने की कोई आशा नहीं थी।

कैंप में पहुँचते-पहुँचते सर फिलिप घोड़े पर से गिर पड़े। मूर्छा से चेत हुआ, तो उन्होंने इशारे से पानी माँगा। तलाश के बाद पानी लाया गया और फिलिप के हाथ में दे दिया गया। पानी होठों तक ही जाने पाया था कि उनके कानों में एक-दूसरे सिपाही की आवाज आई, जो दूर घायल पड़ा हुआ था और 'पानी-पानी' चिल्ला रहा था।

फिलिप ने गिलास को अपने होंठों से अलग हटा दिया और कहा, इसे उस सिपाही को पिला दो। उसने आग्रह किया कि आप अफसर हैं, आपका मूल्य एक साधारण सिपाही की अपेक्षा अधिक है। इसलिए आप ही पानी पीजिए। फिलिप ने कहा—"मेरा मूल्य इसलिए अधिक है कि मैं सिपाहियों को सच्चे दिल से प्यार करता हूँ और उनकी तकलीफ को अपनी तकलीफ से बढ़कर समझता हूँ। यदि यह बात मुझमें न रहे तो फिर किस प्रकार मुझे बड़ा कहा जाएगा ?"

"मुझे एक सिपाही से बड़ा समझा जाता है, इसलिए मेरा बड़प्पन इसी में है कि मैं इस पानी को सिपाही को दे दूँ।" उनकी आज्ञानुसार वह गिलास सिपाही के पास पहुँचा दिया गया, सर फिलिप सिडनी कुछ क्षण उपरांत स्वर्ग सिधार गए, पर उनका बड़प्पन अभी तक जीवित है।

कितना बड़ा अंतर

कोडक कंपनी के मालिक जार्ज ईस्टमैन ने रोचेस्टर में एक थियेटर खोलने की योजना बनाई। इनमें ६ हजार व्यक्ति एक साथ बैठ सकते थे। उसने आर्किटेक्ट को थियेटर के संबंध में सारी जानकारी पहले ही दे दी थी। रात को जब वह विचार करने लगे तो उन्हें ध्यान आया कि इसमें दो कुर्सियों को और बढ़ाया जा सकता है। सुबह होते ही आर्किटेक्ट को पुनः बुलवाया गया।

ईस्टमैन ने कहा—"६ हजार कुर्सियों के अतिरिक्त दो अन्य कुर्सियों के संबंध में मेरी समझ में एक तरीका आया है। आर्किस्ट्राफ्लोर के पास आसानी से उन दो कुर्सियों के लिए स्थान निकला जा सकता है। अतः आप दो कुर्सियाँ और बनवाकर वहाँ लगाएँ।"

यह सुनकर आर्किटेक्ट को बड़ा आश्चर्य हुआ उसने कहा—"श्रीमान जी ! ६ हजार कुर्सियों के साथ दो कुर्सियाँ और बनाने से क्या अंतर पड़ता है ?"

अरे ! आप इतना भी नहीं जानते। यदि प्रति कुर्सी के ३० सेंट अधिक मिले, तो दो कुर्सियों के ६० सेंट हो गए। सप्ताह में ६ शो हुआ करेंगे, तो ३ डालर २० सेंट अधिक मिलेंगे और यदि यह मानें कि यह थियेटर २० वर्ष तो चलेगा ही तो यह धनराशि इससे भी बढ़कर ३७४४ डालर हो जाएगी। इतनी धनराशि से हम कोई नया उद्योग प्रारंभ कर सकते हैं। फिर साल भर का हिसाब लगाया जाए तो यह राशि १८७ डालर २० सेंट हुई। इस रकम ३७४४ डालर पर ६ प्रतिशत के हिसाब से मिलने वाला ब्याज है। यदि आप कहें तो और आगे भी हिसाब लगाकर बताऊँ।" ईस्टमैन ने बड़े विश्वास के साथ कहा।

आर्किटेक्ट ने शीघ्रता से उत्तर दिया—"नहीं, नहीं ! आप जैसा कहेंगे, वैसा ही किया जाएगा।"

स्मारक नहीं आदर्श

रूस के अलेक्जेंडर प्रथम ने फौज में बड़ी वीरता दिखाई। लोगों ने उसका स्मारक बनाने की इच्छा प्रकट की तो अलेक्जेंडर ने कहा—"मुझे स्मारक से शांति नहीं मिलेगी। यदि तुम अपने आप में वह शक्ति, संयम, चरित्र और तेजस्विता भरते हो, जिसने मुझे सर्वत्र विजयी बनाया, तो वही मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ स्मारक होगा।"

जान पीटर तृतीय की स्वर्ण मूर्ति बनाई जाने लगी। उसे पता चला कि उनके नाम पर स्मारक बनने जा रहा है, तो उसने यह कार्य रोक दिया और कहा—"मैंने जीवन भर जनहित की कामना की है, यदि तुम सब भी लोकसेवा की भावनाओं को हृदयंगम करते रहोगे, तो तुम सभी मेरी सोने से ज्यादा कीमती प्रतिमूर्ति होंगे।"

एक बार नैपोलियन बोनापार्ट की भी मूर्ति बनाई जाने लगी, तो उसने हँसते हुए कहा—"मैं अपने पीछे उन परंपराओं को

जीवित रखना पसंद करता हूँ, जो वीरता और स्वाधीनता के भाव अक्षुण्ण रखती है। स्मारक को मैं अपनी जेल समझता हूँ।"

परिश्रम का फल

मैक्सिको नगर जहाँ विश्व के ओलंपिक खेले जाते रहे हैं, वहाँ कभी सुनसान और पत्थरों के अतिरिक्त कुछ न था। यहाँ मैक्सीकाज नामक कबीला परिवार रहता था, उसे एक अन्य कबीलों के दल ने अपना गुलाम बना रखा था। मैक्सीकाज बड़े कष्ट झेल रहे थे। ऐसी ही अवस्था में एक दिन उनका सरदार मर गया। मरते समय उसने कहा—"परिश्रम करना, परिश्रम से ही कष्ट दूर होंगे।"

बहुत दिन बाद एक दिन भूखा-प्यासा कबीला परिवार शोक सागर में डूबा बैठा था, तभी उन्होंने देखा कि पत्थरों के बीच एक नागफनी उग आई है। पत्थरों के बीच नागफनी का विकास कठिनाई से होता है। थोड़ी ही देर में एक बाज उड़ता हुआ आया और उसके ऊपर बैठ गया, वह बड़ी देर तक बैठा ही रहा। कबीले की एक समझदार स्त्री से कहा—"बाज का संदेश मेरे पास आ रहा है कि तुम परिश्रम करके यहाँ एक नगर बसाओ, तुम्हारे कष्ट दूर होंगे।"

कहते हैं, उसी दिन मैक्सिकोज की नींव पड़ी। मैक्सिको ने अथक् परिश्रम करके यह नगर बसाया और अन्य कबीलों को जीत कर स्वस्थ राज्य की परंपरा डाली। इस घटना की याद में आज भी मैक्सिकोज झंडे में नागफनी पर बैठे बाज का चित्र प्रयुक्त होता है।

दया और साहस

एक क्रांतिकारी को अपनी मातृभूमि के प्रति कर्तव्य परायणता निभाने के अपराध में—अपनी मातृभूमि को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने के अपराध में फाँसी की सजा सुनाई गई।

पीछे बच रही दो आत्माएँ। एक तो उनकी विधवा पत्नी तथा दूसरी उनकी युवा कन्या। कन्या के विवाह का प्रश्न दुःखों की असीम-विस्तृत भूमि को चिढ़ाता-सा चट्टान जैसा समक्ष खड़ा था। कई अवरोध थे। पैसे की कमी, संरक्षक का अभाव तथा विपन्नता। विधवा की यह दशा देखकर एक शिक्षित नवयुवक ने स्वयं आगे बढ़कर विवाह मंजूर कर लिया। युवक राजी भी हुआ, तो पुलिस अधिकारी ने धमकी दी। "क्रांतिकारी की कन्या से विवाह करोगे, तो परिणाम अच्छा न होगा।"

वह बेचारा डर गया। परेशानी की बात एक संपादक तक पहुँची। उनका संवेदनशील हृदय द्रवित हो उठा। वे सीधे उक्त गाँव गए और उस पुलिस अधिकारी से मिले। कहा, "आपको एक असहाय तथा दुःखी परिवार को और अधिक दुःखी तथा चिंताकुल बनाने में आखिर क्या मिलेगा ? सोचिए—यदि उस क्रांतिकारी के स्थान पर आप होते, तो क्या आपको यह स्थिति उत्पन्न करना अच्छा लगता ? यदि आप किसी के आँसू पोंछ नहीं सकते, तो फिर किसी को रुलाने का भी आपको क्या अधिकार है ?"

पुलिस अधिकारी पानी-पानी हो गया। उसने अपने कृत्य पर क्षमा माँगी, बाद में उसने स्वयं कन्या का विवाह उसी युवक से करवाया और सारा व्यय-भार भी स्वयं ही उठाया।

यों संवेदना उड़ेलने वाले तथा विवाह में कन्या के पिता का उत्तरदायित्व उठाने वाले संपादक थे, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी !

भूत

नरेंद्र अपने मित्रों के साथ एक पेड़ पर चढ़कर खेल रहे थे। पेड़ का स्वामी उधर से निकला, तो उसे इस बात की चिंता हुई कि यह बच्चे बार-बार ऊपर-नीचे चढ़ते-उतरते हैं, कहीं ऐसा न हो कि असावधानी के कारण कोई गिर जाए और उसके चोट लग जाए।

उस व्यक्ति को एक तरकीब सूझी, उसने उन बच्चों के अगुआ नरेंद्र से कहा—"देखो बेटे ! तुम्हें शायद मालूम नहीं है, इस पेड़ पर एक भूत रहता है, जो बच्चे उस भूत को परेशान करते हैं, वह उनके हाथ-पैर तोड़ देता है। अतः मेरी सलाह यह है कि तुम सब भी नीचे ही खेलो।"

भूत का नाम सुनते ही नरेंद्र के सब साथी एक-एक कर खिसक गए। नरेंद्र अकेला ही उस पेड़ पर खड़ा रहा और साहस के साथ बोला—"प्यारे मित्रों ! यह सज्जन झूठ बोलते हैं, देखो मैं तुम लोगों के सामने अकेला इस पेड़ पर खड़ा हूँ। यदि भूत हो तो मेरे सामने आए, मैं उसका सामना करने के लिए तैयार हूँ।" भूत नहीं ही आया, हाँ, इस बच्चे के साहस और दृढ़ता ने उसे आगे अवश्य बढ़ाया—इतना बढ़ाया कि स्वामी विवेकानंद के नाम से उसने न केवल स्वयं यश कमाया वरन् भारत माता को भी धन्य कर दिया।

गढ़ आया, सिंह गया

तानाजी के पुत्र का विवाह था। बारात कूच करने को थी कि उनके स्वामी का पत्र मिला कि कोंडणा दुर्ग को विजय करने के लिए तुरंत कूच करो। तानाजी ने विचार किया—परमार्थ सांसारिक कर्तव्यों से बड़ा है, अतः पत्र पढ़ते ही वह चल पड़े। बारातियों से बोले—"पहले कोंडणा की चढ़ाई फिर कुछ और।" तानाजी सेना लेकर गए, उनकी जीत हुई, परंतु वह जीवित न रह सके। स्वामी ने कहा—"गढ़ आया, परंतु सिंह चला गया।" उस गढ़ का नाम सिंहगढ़ रखा गया।

कर्तव्य परायणता

हाथ ऊपर उठाए पटरी के बीच में खड़ा एक बालक "गाड़ी रोको ! गाड़ी रोको !!" कहकर चिल्ला रहा था और इधर उत्तर-पूर्व सीमांत रेलवे का अवध-तिरहुत मेल पूरी तेजी से चला आ रहा

था। बालक और मेल के मध्य की दूरी धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। आगे ही तो इस लाइन का बतासी स्टेशन है।

ड्राइवर ने सोचा कि यह बालक खेल-खेल में पटरी के बीच आकर खड़ा हो गया है और ऊपर हाथ उठाकर गाड़ी रुकवा रहा है। गाड़ी जब इसके पास आ जाएगी, तब अपने आप हट जाएगा। रेलवे लाइन के किनारे के गाँव के बालक जब अपने पशुओं को पटरी के किनारे चराते हैं, तो ऐसे ही खेल किया करते हैं। कोई पटरी पर पैसा रखकर देखता है कि पहियों की रगड़ से कितना बढ़ गया ? कोई पटरी पर ईंट रखकर किनारे पर खड़ा होकर तमाशा देखते हैं।

रेलगाड़ी के ड्राइवर ने काफी जोर से सीटी दी, फिर भी बालक न हटा। वह सोचता रहा, यदि ड्राइवर ने पहले गाड़ी न रोकी, तो मेरी जीवन-लीला समाप्त कर तो रोकेगा ही। यदि मेरे मर जाने से सैकड़ों यात्रियों के जीवन बच सकते हैं, तो ऐसा करने में हर्ज भी क्या है और अब उसकी कर्तव्य भावना ने जीवन का मोह भी भुला दिया।

बालक की दृढ़ता को देख ड्राइवर को गाड़ी रोकनी पड़ी। बालक को अपनी सफलता पर बड़ी प्रसन्नता थी। बीच मैदान में गाड़ी रुकी, तो कितने ही यात्री उतरकर एक-दूसरे से पूछताछ करने लगे। पता लगा कि थोड़ी दूर पर पटरी के स्लीपरों में आग लगने के कारण काफी क्षति हुई है। तीन घंटे गाड़ी रुकी रही, मरम्मत हो जाने पर ही उसे आगे बढ़ाया गया।

एक छोटे बालक के साहस ने सैकड़ों यात्रियों के जीवन को मृत्यु के मुँह से बचाया तथा लाखों रुपए की हानि होते-होते बच गई। रेलवे अधिकारियों ने उसके साहस की सराहना की और इनाम भी दिया।

आत्म विश्वास और आत्म पुरुषार्थ

बहुत प्रयत्न किया बेचारे ने, बुद्धि पर सारी शक्ति झोंक दी, पर एक भी विचार न उठ पाया, तो मुँह में शब्द कहाँ से आते ? बुरी तरह घबड़ा गया। उसकी यह विचित्र स्थिति देखकर व्याख्यान सुनने वाले लोग खिल-खिलाकर हँस पड़े। बेचारे की और सिट्टी गुम हो गई। जब तक स्टेज से नीचे नहीं उतार दिया गया, तब तक भीड़ तालियाँ पीटती रही।

इंग्लैंड के मिस्टर कौबडेन के एक शब्द भी उच्चारण न कर पाने के लिए सभापति ने क्षमा मांगी और वह युवक एक कोने में दुबका हुआ अपनी असफलताओं पर आंसू बहाता रहा। लेकिन दूसरे ही क्षण उसने हिम्मत बांधी, अपनी अंतरात्मा की सोई शक्तियों को जाग्रत् किया, अगले ही पल उसका चेहरा गौरवदीप्त हो उठा। उसकी नस-नस में आत्म शक्ति की विद्युत् दौड़ने लगी। उसने सभापति से मंच पर जाकर जन समूह को संबोधित करने की अनुमति मांगी। सभापति के अनुमति संकेत के साथ ही वह मंच पर जा खड़ा हुआ। उसकी वाणी से आत्मशक्ति का सम्मोहन झर रहा था। श्रोता वक्ता के आत्म विश्वास पर मुग्ध हो उठे। एक भी शब्द न बोल पाने वाले कौबडेन, अपना सोया आत्म विश्वास जगाकर श्रेष्ठतम वक्ता बन चुके थे।

सुप्रसिद्ध अंग्रेज अभिनेता टाल्मा के स्वास्थ्य और सौंदर्य से आकर्षित डाइरेक्टरों ने उसकी माँग स्वीकार कर ली और उसे रंगमंच पर पहुँचा दिया, किंतु उस बेचारे से न तो एक शब्द बोलते बना न नाचते-कूदते। फिल्म डाइरेक्टर ने गले की कमीज पकड़ी और झिड़ककर नीचे उतार दिया। कई अच्छे लोगों की सिफारिश के कारण एक बार फिर रंगमंच पर पहुँच तो गया, पर बेचारे की एक ड्रामा में बोलते समय ऐसी घिग्घी बँधी कि कुछ बोल ही नहीं पाया, फिल्म की आधी रीलें बेकार हो गईं। डाइरेक्टरों ने डाँटकर कहा—अब दुबारा आने का प्रयत्न मत करना, महाशय ! और उसे डाँटकर वहाँ से भगा दिया।

निराश टाल्या—नहीं, आत्म विश्वासी टाल्या—फिर भी हिम्मत न हारा, न कुलियों जैसे सामान उठाने के छोटे-छोटे पार्ट अदा करते-करते एक दिन सुप्रसिद्ध अभिनेता बन गया। किसी ने पूछा—"तुम्हारी सफलता का रहस्य क्या है ?" तो उसने हँसकर कहा—"जितनी बार गिरो—उतनी बार उठो, यह सिद्धांत स्वीकार कर लें, तो आप भी निरंतर उठते चले जाओगे, किसी सहारे की जरूरत न पड़ेगी।"

निराशा के बाद आशा

स्काटलैंड के राजा ब्रूस को अपने शत्रुओं से छह बार हारना पड़ा। उसने हर बार प्रयत्न किए, किंतु असफलता के सिवाय और कुछ हाथ न आया।

छह बार हार जाने के पश्चात् वह बहुत निराश हो गया था और खिन्न मन से अपने प्राण बचाने के लिए एक टूटे-फूटे स्थान में छिपा पड़ा था। नाना प्रकार के विचार उसके मन में घूम रहे थे। सोचता था, शायद मेरे भाग्य में असफलता ही लिखी होगी।

इन्हीं विचारों में वह पड़ा हुआ था कि ऊपर छत पर उसकी निगाह गई। देखा एक मकड़ी जाला तानने के लिए बार-बार प्रयत्न करती है, किंतु बार-बार असफल होती है, उसका तार हर बार टूट जाता है। राजा बड़े मनोयोग के साथ उसकी ओर देख रहा था, छह बार वह मकड़ी असफल हुई, किंतु सातवीं बार उसका मनोरथ पूरा हो गया, उसने जाले को तान ही लिया।

ब्रूस के मन में एक नवीन स्फुरणा हुई। उसने कहा—यदि सातवीं बार मकड़ी सफल हो जाती है, तो मैं भी कृतकार्य हो सकता हूँ। अब की बार उसने दूने उत्साह के साथ सेना का संगठन किया और शत्रु पर चढ़ाई कर दी। इस हमले में उसे सचमुच विजय प्राप्त हुई और अपना खोया हुआ राज सिंहासन प्राप्त कर लिया।

हममें से कितने ही ऐसे हैं, जो एक-दो बार की असफलता से ही निराश हो जाते हैं और प्रयत्न को छोड़ बैठते हैं। यह सफलता का मार्ग नहीं है। विजय की पुष्प माला उसके गले में [illegible] जाती है, जो अनेक बार निराशा के अवसर आने पर भी उन्हें कुचलता हुआ अपने ध्येय पथ पर बढ़ता ही चला जाता है।

दया की देवी

सन् १८१३ में इंग्लैंड के जेलखानों की बड़ी बुरी दशा थी। एक-एक कोठे में ३०० तक अधनंगी औरतें बंद कर दी जाती थीं। उनके पास न ओढ़ने-बिछाने को होता और न पहनने के कपड़े। युवा एवं वृद्ध स्त्रियाँ तथा छोटी उम्र की बालिकाएँ घास और कूड़े के ढेर पर चिथड़ों में लिपटकर सो जाती थीं। उनकी सुधि लेने वाला कोई न था। अधिकारी उन्हें सिर्फ इतना भोजन देते थे, जिससे वे किसी प्रकार जीवित रह सकें।

यह दशा एलिजाबेथ फ्राय नामक एक देवी ने देखी, तो उसकी आँखें भर आईं। फ्राय लिखी-पढ़ी थी। उसके पास आनंद और ऐश्वर्य की जिंदगी बिताने योग्य बुद्धि थी ; परंतु जीवन के मधुर फल को चुपचाप खुद ही कुतर-कुतर कर खाते रहना उन्हें पसंद न आया। सामने फुलवारी पर दृष्टि गई, तो देखा कि पुष्प अपने सुंदर जीवन को दूसरों के लिए अर्पित करता हुआ मुस्करा रहा था। फ्राय ने अपना जीवन इन दुखियों के निमित्त दे दिया। उन्होंने बंदीगृह की पीड़ित बहनों के उद्धार का व्रत लिया।

सरकार की सहायता से उन्होंने जेल में शिक्षा का प्रचार करना आरंभ किया। बंदीगृह की नारकीय यंत्रणा भोगने वाली स्त्रियों को पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ कि कोई उनके परित्राण करने के लिए भी प्रयत्न करेगा, परंतु जब पाप और अज्ञान में डूबी हुई मूर्तियों को फ्राय ने प्रेमपूर्वक अपने गले लगाया और उन्हें शिक्षा देना आरंभ किया, तो उनकी जीवन दिशाएँ ही बदल गईं। कुछ ही मास के प्रयत्न ने उनके नारकीय जीवन को शांत, निर्दोष और पवित्र बना दिया। सुधार का विस्तार हुआ। सरकार उसके कार्य को

देखकर प्रभावित हुई और उसने इस प्रकार की शिक्षा कानून द्वारा जेलखानों में जारी कर दी।

आज श्रीमती फ्राय इस संसार में नहीं हैं, परंतु उनके पवित्र प्रेम का पौधा तप्त और दुःखी प्राणियों को शीतलता प्रदान करने के लिए जीवित है। उनकी योजना इस समय समस्त सभ्य संसार में काम में लाई जा रही है।

दूसरों को आराम पहुँचाने का प्रयत्न

हेडविग बी० मर्फी, अस्पताल में पलंग पर लेटे हुए बड़ी बेचैनी अनुभव कर रहे थे। थोड़ी देर पहले ही तो डॉक्टरों ने उनके पेट का ऑपरेशन किया था, फिर इतनी जल्दी नींद आ भी कैसे सकती थी ? उसी वार्ड में पाँच रोगी और थे, जिनमें तीन का आपरेशन हो चुका था और दो का आपरेशन होना था। इन्हीं रोगियों में एक १७ वर्षीया युवती हेलन भी थी, जिसका अपेंडिसाइटिस का आपरेशन हुआ था। वह पीड़ा से कराह रही थी। उसी के पलंग के बराबर यह एक अन्य रोगी स्त्री थी, जिसका कैंसर का आपरेशन हुआ था। जिसके बचने की भी आशा न थी, फिर भी न कराहती थी और न किसी प्रकार का शिकवा करती थी। दर्द बढ़ रहा था, पर उसमें सहन करने की शक्ति भी कम न थी। नाम था नोनी।

रात को दर्द के कारण हेलन रोने लगी। नोनी धीरे से अपने पलंग पर से उठी और हेलन को धैर्य बँधाने लगी—"बेटी ! सोजा, सुबह तक तुम्हारा सारा दर्द गायब हो जाएगा। मैं जानती हूँ कि तुम्हारा दर्द तुम्हें बेचैन किए हुए है, पर यदि तुमने इस दर्द के बारे में सोचना कम कर दिया, तो वह दर्द भी अपने आप कम हो जाएगा।" लेकिन पीड़ा के कारण उसका रोना बंद न हुआ।

अब नोनी ने उसके स्कूल की संगीत पार्टी, परीक्षा, उसकी सुंदरता व यौवन की चर्चा शुरू की, ताकि किसी भी तरह उसका ध्यान अपने कष्टों से हटकर दूसरी ओर चला जाए। फिर भी कोई

असर नहीं हुआ। आखिरकार नोनी ने कहा—'बेटी ! अच्छा तुम सब आँखें बंद कर लो, मैं तुम्हें गाना सुनाती हूँ। उसकी भक्ति रस के गीतों की स्वर लहरी में हेलन की झपकी लग गई और थोड़ी ही देर में हेडविग बी० मर्फी को भी नींद आ गई। दूसरे दिन सुबह नोनी उस वार्ड में न थी। डॉक्टरों ने पूर्ण विश्राम की सलाह दी थी, पर वह अपने दुःख-दर्द को भुलाकर दूसरों को आराम देने में लगी रही और न मालूम रात को कब इस संसार से विदा हो गई।

कर्तव्य निष्ठा

काशी हिंदू-विश्वविद्यालय के उपकुलपति बनने पर आचार्य नरेंद्रदेव को संस्था की ओर से एक मोटर मिली थी, परंतु वे उसका उपयोग केवल संस्था के कार्य के लिए ही किया करते थे। अपनी धर्मपत्नी तथा बालकों के आने-जाने के लिए वे सार्वजनिक बस या रिक्शा का ही उपयोग करते थे। यदि कभी अपने सगे-संबंधियों या मित्रों को कार में बैठाना आवश्यक होता, तो वे अपने पैसों से पेट्रोल डलवाकर उसका उपयोग करते थे, वह भी कभी-कभी अपवाद या आपद्धर्म के रूप में।

दया

जर्मन के सम्राट फ्रेडरिक महान् ने एक बार अपने दरबान को बुलाने के लिए घंटी बजाई। पर जब दरबान नहीं आया, तब वे स्वयं उठकर दरबान के कमरे में गए। देखा कि वह तो गहरी निद्रा में सोया हुआ है और उसकी जेब में उसकी विधवा माँ का पत्र पड़ा हुआ है। उसकी माँ ने पत्र में अपने दुःख-दारिद्र की बात लिखी थी। फ्रेडरिक ने पत्र पढ़कर उसकी माँ को भेजने के लिए एक बड़ी धनराशि उसकी जेब में चुपचाप रख दी।

निंदक नियरे राखिए

एक बार महाराष्ट्र की एक पत्रिका में गाँधी जी की बुराई की गई। एक भद्र महिला को इससे बड़ा दुःख हुआ। उसने गाँधी जी को लिखा—"मराठी पत्र-पत्रिकाओं में आपके खिलाफ लगातार जो

झूठा और विषैला प्रचार चल रहा है, वह असह्य है। आप इस विषय में बिल्कुल मौन हैं, इसलिए हमें कोई मार्ग नहीं सूझता है।"

गाँधी जी ने उत्तर दिया—"महाराष्ट्र के बहुत-से मित्रों द्वारा मेरे विरोध में जो प्रचार चल रहा है, उससे मैं अनभिज्ञ नहीं हूँ, पर मैं क्या करूँ ? इस देश में बहुत-से ऐसे भी मित्र हैं, जो मेरी बहुत अधिक प्रशंसा करते हैं। निंदा का बुरा मानना क्या और प्रशंसा से फूल जाना क्या ? न तो मैं निंदा से घट जाता हूँ और न प्रशंसा से बढ़ जाता हूँ। जैसा हूँ, वैसा ही रहूँगा। अपने सिरजनहार की दृष्टि में मनुष्य सच्चा बना रहे, तो फिर उसे किसी बाहरी निंदा-स्तुति की चिंता नहीं करनी चाहिए।"

आवश्यक कार्य

गर्मी ऐसी थी, मानो अँगारे बरस रहे हों। ऐसे समय में इलाहाबाद के एक चौराहे पर एक काली-कुबड़ी रोगिणी पड़ी कराह रही थी। उसकी कुहनी पककर सड़ गई थी। उसमें से दुर्गंध उड़ रही थी। अनेक राहगीर उस रास्ते में आ-जा रहे थे, पर उसकी दुर्दशा पर कोई ध्यान नहीं दे रहा था। पंडित मदनमोहन मालवीय भी उधर से कहीं जा रहे थे। रोगिणी को देखते ही वे रुक गये। तुरंत उन्होंने एक गाड़ी वाले को बुलाया और एक युवक की सहायता से रोगिणी को गाड़ी में बिठाकर अस्पताल ले गये। युवक ने मालवीय जी से कहा—"मैं रोगिणी के लिए आवश्यक व्यवस्था कर लूँगा। आप चाहें तो अपने काम से चले जाएँ।"

मालवीय जी ने उत्तर दिया—"इससे अधिक और क्या आवश्यक कार्य हो सकता है, रोगिणी की समुचित व्यवस्था हो जाने के बाद ही मैं यहाँ से अन्यत्र जाऊँगा।"

प्रतिष्ठा का ध्यान

एक बार ईश्वरचंद्र विद्यासागर अपने एक बड़े जमींदार मित्र से भेंट करने कलकत्ता जा रहे थे। एक साधारण दुकानदार ने उन्हें बुलाया और बैठने को एक बोरा बिछा दिया। विद्यासागर बोरे पर

बैठकर उससे बातें करने लगे। उसी समय उनका जमींदार मित्र बग्घी पर कहीं जा रहा था। वह उन्हें देखकर कुछ झिझक से उतरा और उनसे बोला—"तुम जहाँ-तहाँ क्यों बैठ जाते हो ? क्या तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा का कोई ध्यान नहीं है ?" यह सुनकर विद्यासागर ने उत्तर दिया—"तुम मुझसे मित्रता समाप्त कर दो, ताकि फिर तुम्हें शिकायत का कोई अवसर न मिले। वह गरीब है, केवल इसलिए मैं अपने दुकानदार मित्र का अपमान नहीं कर सकता।"

निर्भीकता

भारत तब अंग्रेजी सत्ता के आधीन था। प्रभुसत्ता के मद में--सत्ताधारी अंग्रेज—भारतीय मनुष्यों से बड़ा ही धृष्ट व्यवहार करते थे। उन्हें बहुत ही नीची दृष्टि से देखते थे।

गुरुकुल कांगड़ी के कुछ छात्र अपनी ग्रीष्मकालीन छुट्टियाँ बिताने 'धर्मशाला' नामक नगर में गए हुए थे। वहाँ गोरे फौजियों की छावनी थी। एक दिन प्रातः जब छात्र घूमने जा रहे थे—तो सामने से कुछ फौजी आते हुए दिखाई दिए।

समीप आने पर छात्रों ने सड़क के एक ओर होकर उन्हें रास्ता दे दिया। एक सिपाही रास्ता छोड़कर एक छात्र की ओर मुड़ा। धीरे-धीरे घोड़ा इतने समीप ले आया कि वह छात्र के शरीर से स्पर्श करने लगा।

गोरे फौजी का अनुमान था कि या तो छात्र झुककर सलाम करेगा या फिर डरकर भागेगा, पर दोनों में से एक भी बात न हुई। छात्र वहीं दृढ़ता से खड़ा रहा। तब फौजी चिढ़कर बोला—"सलाम करो।"

छात्र ने निर्भीकता से कहा—"क्यों करें सलाम ?" सैनिक इस आत्माभिमान भरे उत्तर से उत्तेजित हो उठा और अंग्रेजी में कहा—"तुम्हें चाहिए कि हर अंग्रेज को सलाम करो।"

छात्र अपने स्थान पर अब भी अचल खड़ा था। उसी स्थिर मुद्रा में उसने फिर कहा—"ऐसा कोई कानून नहीं है, जो हमें जबरदस्ती सलाम करने को बाध्य करे।"

गोरे सिपाही के पास अब दो ही विकल्प थे—या तो वह उस निर्भीक छात्र पर अपना घोड़ा चढ़ा दे या फिर अपनी हार मानकर वापिस चला जाए। मन ही मन वह क्रोध से जला जा रहा था।

किंतु छात्र के अदम्य साहस—निर्भीक मुखाकृति तथा दृढ़ संकल्प शक्ति के सामने उसे लौटने का ही निश्चय करना पड़ा और यह कहते हुए कि "टुम सलाम नहीं करता ? अच्छा देखा जाएगा।" वह चला गया।

वही छात्र आगे चलकर एक बड़ा साहित्यकार तथा सफल पत्रकार बना। लोग उसे आचार्य इंद्र विद्यावाचस्पति के नाम से जानते हैं।

किसी को कष्ट नहीं देना

अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति ट्रूमेन बड़ी ही सादगी से रहते थे। अपना छोटे से छोटा कार्य करने में भी उन्हें संकोच नहीं होता था। यहाँ तक कि अपने मोजे तथा बनियान भी वे स्वयं ही धोकर डाल दिया करते थे। नौकर के आग्रह करने पर वे कहते, "नहीं भाई—मुझे मेरी माँ ने यही सिखाया है। अपने सुख के लिए दूसरों को कम से कम ही कष्ट देना चाहिए।"

रात को सिर में तेल मालिश करवाने में उन्हें बड़ा आनंद आता था। लेकिन करने वाले आदमी को जब वे बुलवाते थे, तो सदा यही कहकर कि "पहले देख लेना कि वह कहीं सो तो नहीं गया है। यदि सो गया हो तो मत बुलाना।"

काम की चीज

गाँधी जी एक बार हवाई जहाज में यात्रा कर रहे थे। एक अंग्रेज अधिकारी भी उसी में यात्रा कर रहा था। वह गाँधी जी से

बहुत ही चिढ़ता था। वहाँ और कुछ तो संभव न था, उसने दो-तीन पृष्ठ गालियों से भर दिए और गाँधी जी को दे दिए।

गाँधी जी ने उन्हें लिया और धीरे से उन पृष्ठों में लगी आलपीन निकालकर रख ली। पृष्ठ रद्दी की टोकरी में डाल दिए।

पास बैठे सज्जन ने पूछा—"आपने पढ़ा नहीं उन्हें ? और रद्दी की टोकरी में फेंक दिया ?"

गाँधी जी मुस्कराकर बोले—"जो वस्तु काम की थी वह रख ली है। अनावश्यक को रद्दी की टोकरी में ही डाला जाता है।"

आत्माभिमान

राजा मानसिंह तोमर ने कुमारी मृगनयनी की असाधारण वीरता तथा पराक्रम से प्रभावित होकर उससे प्रणय याचना की। वह एक गरीब किसान की कन्या थी। भाई था केवट अटल।

विवाह संस्कार कहाँ हो, यह समस्या थी। राजा मानसिंह का कहना था कि "आप सब ग्वालियर चलें, वहीं संस्कार हो जाएगा।"

किंतु कन्या के भाई अटल का स्वाभिमान सजग था। वह बोला—"आप सर्व शक्तिमान् हैं महाराज ! किंतु हमारी परंपरा यही है कि पाणिग्रहण संस्कार कन्या के पिता के घर पर ही संपन्न होता आया है। आपके सामने हम कुछ भी नहीं। फिर भी जो कुछ फूलपत्ती बनेगी—उसके साथ हम अपने घर से ही बहन को विदा करेंगे।"

मानसिंह अटल के इस स्वाभिमान से बहुत प्रसन्न हुए और बारात लेकर ग्वालियर से गए। तब दहेज स्वरूप एक गाय देकर अटल ने अपनी बहन को विदा किया। बाद में भी राजा की ओर से कोई पद या सहायता उसने स्वीकार नहीं की। ऐसा था—इस भारत के गरीब कृषक का आत्मसम्मान।

भूखा कलाकार

राजा मानसिंह बैजू के गायन से इतने प्रभावित हुए कि अपना गुरु बनाकर विधिवत् सपत्नीक संगीत की शिक्षा ग्रहण की।

एक दिन राज सभा में संगीत का कार्यक्रम चल रहा था। राजा उपस्थित न थे, तभी एक बूढ़ा आया। प्रार्थना की कि—"यदि आज्ञा हो तो मैं भी कुछ गाऊँ।"

कला के क्षेत्र में राजा या प्रजा का, गरीब अथवा अमीर का कोई अंतर नहीं होता। बूढ़े को आज्ञा मिल गई। उसने गाया और ऐसा गाया कि समस्त सभासदों सहित स्वयं बैजू मुग्ध हो गए। अंत में बैजू ने स्वयं कहा—"आपकी कला ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। मैं आपसे कुछ सीखना चाहता हूँ।"

यह समाचार हवा की तरह फैल गया कि बूढ़ा बैजू से भी अच्छा गाता है।

सुनकर राजा मानसिंह ने आज्ञा दी कि "हम अपने गुरु बैजू से अधिक कोई जानकार हो, यह सहन नहीं कर सकते, अतः उस बूढ़े को ढूँढ़कर फाँसी दे दी जाए।"

बैजू पैरों पड़ गया, "महाराज ! कला किसी एक व्यक्ति की थाती नहीं। वह असीम है। कोई अपने सीमित व्यक्तित्व में नहीं बाँध सकता उसे। बूढ़े को प्राणदान मिलना चाहिए।" राजाज्ञा-राजाज्ञा थी। बूढ़े को ढूँढ़कर लाया गया। आवेश में बैजू ने उसे अपने बाहुपाश में भर लिया, किंतु तभी नकली दाढ़ी-मूँछ उतर गई और मानसिंह हँसते हुए बैजू के बाहुपाश से पृथक् हो गए।

भक्ति रस

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री श्याम शास्त्री—मध्य रात्रि से ही कामाक्षी देवी के मंदिर में बैठकर संगीत का अभ्यास करते थे। उनका कहना था कि "संगीत ही मेरा जीवन है—संगीत ही मेरी आत्मा है।"

एक दरबारी संगीतज्ञ के पुत्र को उनका संगीत बड़ा प्रिय था। वह अवसर आकर उनके पास बैठ जाता और घंटों सुना करता। एक दिन वह श्याम शास्त्री से बोला, "तुम्हारे कंठ में तो जादू है। लगता है साक्षात कामाक्षी देवी ही स्वर के रूप में उतर

आती है। यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हें राज-दरबार का गायक बनवा सकता हूँ।"

इस पर श्री श्याम शास्त्री मंद-मंद मुस्कराए और बोले, "लेकिन तब इस कंठ में तुम्हें यह जादू नहीं मिलेगा। जब कला पद, यश अथवा धन के बदले में बिक जाती है, तब उसका जादू समाप्त हो जाता है। मुझे अपनी इस देवी के अतिरिक्त किसी की कृपा या अनुग्रह नहीं चाहिए।"

शुभ दर्शन

एक बार महाराजा रणजीतसिंह एमन बुर्ज में बैठे हुए माला फेर रहे थे। उनके समीप ही फकीर अजीजुद्दीन भी तसबीह लिए बैठे थे। महाराज रणजीतसिंह हिंदू धर्म की परंपरा के अनुसार मन-के अंदर की ओर फेर रहे थे और फकीर साहब मुस्लिम मान्यता के अनुसार बाहर की ओर।

महाराज को न जाने क्या हुआ कि उन्होंने अजीजुद्दीन से पूछा—"शाह साहब मनके अंदर की ओर फेरना चाहिए या बाहर की ओर ?"

शाह साहब बड़ी मुश्किल में फँसे। यदि अंदर की ओर कहते हैं, तो बात धर्म के विरुद्ध होती है और यदि बाहर की ओर कहते हैं तो महाराज के क्रोधित होने का भय था।

लेकिन शाह साहब भी कम न थे। साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे, ऐसे गुण उन्हें खूब आते थे। सो बात बनाते हुए बोले—"माला फेरने के दो उद्देश्य होते हैं—एक तो अपने दुर्गुणों को बाहर निकालना तथा दूसरा अच्छाइयों को ग्रहण करना। महाराज को सदैव अच्छी बातें, अच्छी योजनाएँ तथा अच्छे काम करने का विचार रहता है। अतः आप मनके अंदर की ओर फेरते हैं, और मैं मन की मलिनताओं को बाहर निकालने की बात सोचा करता हूँ। अतः मैं मनके बाहर की ओर फेरता हूँ।" समन्वय तथा

दूसरों में अच्छाई देखने की इस उक्ति ने सभी को पुलकित कर दिया।

पैसे का उपयोग

मानवता के पुजारी—महान् साहित्यकार डॉक्टर अल्बर्ट श्वाइत्जर अपने रोगियों के लिए एक अस्पताल बनवा रहे थे। वे स्वयं एक पहिए में जब कीलें ठोक रहे थे, तभी एक व्यक्ति आया और कहने लगा, "मैं स्कार्ट होम (स्वीडन की राजधानी) से आ रहा हूँ। आपको मैं ...... ।"

बीच में ही श्वाइत्जर महोदय ने उसे रोककर कहा, "जरा आप इस पहिए को पकड़ लीजिए। कार्य शीघ्र हो जाएगा।"

आगंतुक ने वैसा ही किया। जब कार्य समाप्त हुआ, तब डॉक्टर अल्बर्ट ने पूछा, "कहिए कैसे पधारना हुआ ?"

तब उस संदेशवाहक ने पुनः अपनी बात कहनी प्रारंभ की।

"जी, मैं निवेदन ये कर रहा था कि आपको संसार का सर्वोत्तम पुरस्कार—नोबुल पुरस्कार दिया गया है। उसे स्टाक होम चलकर आप ग्रहण करें। यही निमंत्रण देने मैं आया हूँ।"

डॉक्टर साहब ने पहले निर्णायक समिति के प्रति आभार व्यक्त किया। फिर कहने लगे, "आप बड़े अच्छे अवसर पर आए। इस पैसे का उपयोग इस अस्पताल में हो जाएगा।"

नहीं होगा दूसरा विवाह

पुत्र का विवाह परंपरा के अनुसार दस-ग्यारह वर्ष की आयु में कर दिया गया। कन्या सात वर्ष की थी। माता की देख-रेख में ही लड़की का चुनाव किया गया था, किंतु कुछ दिन पश्चात् माता को अनुभव हुआ कि मैंने कन्या का चुनाव ठीक नहीं किया है। अतः उसने विचार किया कि दूसरी उत्तम गुणों वाली कन्या खोजकर दूसरा विवाह कर देना चाहिए पुत्र का।

पर तब तक पुत्र कुछ समझदार हो चला था। माता ने अपना मंतव्य प्रकट किया। पुत्र ने कहा—"दूसरा विवाह नहीं हो सकेगा,

माँ", माँ नाराज हुई। कहने लगीं, "यह मेरे निर्णय का विषय है, तुम्हारा नहीं। तुम अभी बच्चे हो। इसमें मेरे मान-अपमान का प्रश्न है। मैं कन्या पक्ष वालों को आश्वासन दे चुकी हूँ। क्या तुम्हें इसीलिए पाल-पोसकर बड़ा किया था कि तुम्हारे कारण यों लज्जित होना पड़े ?"

पुत्र ने समझाया, "आपका मान मुझे प्राणों से भी प्यारा है। उस पर अपनी जीवन आहुति भी दे सकता हूँ। किन्तु दूसरा विवाह करने से पत्नी का जीवन नष्ट हो जाएगा।"

माता फिर भी न मानीं। तब पुत्र ने कहा—"अच्छा एक बात बताइए। यदि मैं ही अयोग्य होता तो क्या आप उस कन्या को दूसरा विवाह करने की अनुमति देतीं ?"

इस प्रश्न का माँ के पास कोई उत्तर न था। उन्होंने बेटे के विवाह की बात बंद कर दी। वह साहसी बालक थे, दादा भाई नौरोजी ! कांग्रेस के प्राणदाता। भारत के सच्चे समाज-सेवक।

सारा संसार पाठशाला

स्वामी रामतीर्थ बड़े ही कुशाग्र बुद्धि तथा अध्ययनशील विद्यार्थी थे। यहाँ तक कि रास्ते में चलते-चलते भी पुस्तक पढ़ने की आदत थी उन्हें। लोग उनकी इस बात पर कभी हँसी भी उड़ाया करते थे और कभी प्रशंसा भी करते थे।

एक दिन वे इसी प्रकार सड़क पर पुस्तक पढ़ते हुए चले जा रहे थे। एक व्यक्ति ने टोक ही दिया—"भाई साहब ! यह पाठशाला नहीं है, रास्ते चलते तो कम से कम पुस्तकें ठीक-ठिकाने पर रख दिया करें।"

स्वामी जी मुस्कराए और बोले—"यह सारा संसार ही मेरी पाठशाला है।"

जीव दया

श्री गोखले जी कर्मठ समाज-सेवक तथा निष्ठावान् सुधारक तो थे ही। उनका हृदय भी अगाध करुणा, दया तथा प्राणी मात्र के

प्रति ममता से भरा हुआ था। एक बार वे किराए की घोड़ा-गाड़ी करके अपने एक मित्र के यहाँ जा रहे थे।

तांगे की चपेट में एक कुत्ता आ गया। गोखले जी तत्काल गाड़ी रुकवाकर उतरे—उसे उठाया और ताँगे वाले से कहा—"शीघ्र पशु चिकित्सालय चलो।"

और फिर नित्य ही उस पिल्ले को देखने अस्पताल उसी प्रकार जाते, जैसे वह कोई कुटुंबी हो। आवश्यक व्यय भार भी उन्होंने ही उठाया और ठीक होने पर उसे घर पर ले आए।

दूसरा कंगन

संस्कृत के प्रसिद्ध कवि माघ, अपनी उदारता तथा दानशीलता के लिए बड़े प्रसिद्ध थे। कोई भी याचक उनके यहाँ से निराश नहीं लौटा था कभी, लेकिन कुछ दिन से उनकी आर्थिक स्थिति बड़ी खराब चल रही थी, पर दिल तो पहले जैसा ही था। तभी एक रात—जब वे लिखने में तल्लीन थे—एक याचक उनके यहाँ आया। उसने बताया कि—"मुझे अपनी कन्या का विवाह करना है और पास में कुछ भी नहीं है। आपकी ख्याति सुनकर आपके पास आया हूँ। कुछ सहायता मिल जाए तो मेरा काम बन जाए।"

कवि माघ का हृदय भर आया। वे सोचने लगे—"काश ! आज मेरे पास प्रचुर मात्रा में धन होता, तो अतिथि की सारी चिंता मिटा देता। पर चलो सारी न सही, आंशिक ही सही।" घर की शेष संपत्ति पर दृष्टि डाली। पास में सौ रुपए भी नहीं थे। तभी पास ही सो रही पत्नी के शरीर पर दृष्टि गई। धीरे-से एक कंगन उतारा और अतिथि को देते हुए बोले—"इस समय अधिक के लिए मैं विवश हूँ। जो कुछ पास में है उसे ही स्वीकार कीजिए।"

तभी पत्नी की आँख खुली। वस्तुस्थिति को समझा। मंद मुस्कराहट के साथ बोली—"भला विवाह जैसा कार्य एक कंगन

में कैसे हो सकेगा ? यह दूसरा भी ले जाइए।" और दूसरा कंगन भी उतारकर दे दिया। माघ पत्नी के इस कृत्य पर पुलकित हो उठे।

दया का प्रतिदान

देशमान्य गोपालकृष्ण गोखले बचपन में बहुत गरीब थे। प्रारंभिक शिक्षा जैसे-तैसे पूर्ण हुई। अब कॉलेज की ऊँची व खर्चीली पढ़ाई का प्रश्न सामने आया। चारों ओर निराशा के बादल ही दिखाई दे रहे थे।

तभी साहस दिलाया उनके बड़े भाई श्री गोविंद राव ने। भाभी की उदारता भाई से भी बढ़ी-चढ़ी निकली। उन्होंने कुछ आभूषण बेचे और कॉलेज की प्रारंभिक फीस भर दी।

गोविंद राव को कुल पंद्रह रुपए मासिक वेतन मिलता था। लेकिन भाई के प्रति ममता इतनी अधिक थी कि वे कहते थे कि चाहे मुझे मजदूरी करनी पड़े, पर अपने भाई को उच्च शिक्षा अवश्य दिलवाऊँगा।

और पंद्रह में से केवल आठ रुपए वे अपने लिए रखते थे। शेष सात गोखले जी को भेज देते थे।

जब गोखले जी की शिक्षा पूर्ण हो गई, तब उन्हें पैंतीस रुपए प्रति मास की नौकरी मिली। बड़े भाई के उपकार से उनका रोम-रोम कृतज्ञता से झुका था, सो वे भी अपने लिए मात्र ग्यारह रुपए खर्च को रखकर चौबीस रुपए प्रति मास बड़े भाई को भेज देते थे। बड़े भाई बहुत कहते कि तुम अच्छी तरह आराम से रहा करो—मुझे मत भेजा करो, किंतु यह रुपयों का बदला रुपयों में नहीं था, बल्कि ममता की प्रतिक्रिया थी—श्रद्धा के रूप में।

सच्चाई हर जगह चलती है

देशबंधु चित्तरंजनदास से उनके चाचा ने बचपन में पूछा, "चित्त ! तुम बड़े होकर क्या बनना पसंद करोगे ?" चित्तरंजनदास

ने उत्तर दिया, "और चाहे जो बन जाऊँ, पर वकील न बनूँगा" चाचाजी ने पुनः प्रश्न किया, "क्यों भला ?"

तब दास बाबू बोले, "इसीलिए कि वकालत करने वाले को झूठ बोलना पड़ता है। बेईमानी करनी और करानी पड़ती है।"

किंतु परिस्थितिवश कहें या भाग्यवश—चित्तरंजनदास बड़े होकर वकील बने। पर उनकी वकालत औरों की वकालत से बिल्कुल भिन्न प्रकार की थी। झूठे मुकदमे वे कभी न लेते। जितनी मेहनत होती, उतने ही पैसे लेते। उनकी योग्यता का लाभ दीन-हीन, असहाय तथा देशभक्तों को ही मिलता था, असमर्थ व्यक्तियों की पैरवी वे निःशुल्क ही किया करते थे। इसी प्रकार देशभक्तों के मुकदमे भी वे बड़े चाव से लेते तथा अपनी समस्त शक्ति लगाकर उसे मुक्त करने का अथवा फिर कम से कम दंड मिले, ऐसा प्रयत्न करते।"

उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वकालत जैसा बदनाम व्यवसाय भी सत्य, न्याय तथा ईमानदारी के साथ किया जा सकता है।

सेवा भावना

आजाद हिंद फौज के संस्थापक तथा नेता एवं भारत स्वातंत्र्य क्रांति के एक बलिदानी श्री सुभाष चंद्र बोस बचपन में एक दिन देर से घर लौटे। माता ने कारण पूछा तो उन्होंने बताया, "मेरा साथी शीतला के रोग से पीड़ित है। उसी की सुश्रुषा में देर हो गई।"

पिता ने सुना तो कहा—"शीतला छूत की बीमारी है। पास जाने से तुम्हें भी हो सकती है। अतः अब वहाँ मत जाना।"

तब सुभाष बाबू बोले, "हम लोग ही उसकी सहायता न करेंगे ही, तो कौन करेगा फिर ? यदि हम इसी डर से रोगी की देखभाल करना छोड़ दें, तो रोग से रोगी कभी ठीक न हो सकेंगे। बेचारा गरीबी के कारण अपना इलाज भी तो नहीं करा सकता। इस समय

मुझे अपने से अधिक चिंता उसकी है।" पिता यह त्यागमयी सेवा-भावना देखकर गद्‌गद् हो गए।

विद्या का दूध

स्वामी रामतीर्थ बचपन में गाँव के मौलवी साहब से पढ़ा करते थे। प्रारंभिक पढ़ाई पूरी होने पर उन्हें पाठशाला भेजा गया। तब मौलवी साहब को क्या दिया जाए, यह प्रश्न सामने आया। स्वामी जी के पिता जी उन्हें मासिक वेतन के अतिरिक्त इस समय कुछ और भेंट करना चाहते थे।

तभी स्वामी जी बोल उठे, "पिताजी ! उन्हे अपनी बढ़िया दूध देने वाली गाय दे दीजिए। इन्होंने मुझे सबसे बढ़िया दूध-विद्या का दूध पिलाया है।"

शिष्य की इस ज्ञानमयी श्रद्धा से पिता तथा गुरु दोनों ही पुलकित हो उठे।

विद्या की लगन

सरदार वल्लभ भाई पटेल अपने अध्ययन तथा ज्ञानार्जन के प्रति अत्यंत जागरूक थे और उतने ही सजग थे—अपने देश की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए।

उस समय अंग्रेज भारतीयों को बहुत छोटी दृष्टि से देखते थे। वल्लभ भाई जब बैरिस्ट्री पढ़ने गए, तो अपने निवास स्थान से ग्यारह मील दूर—लंदन की कड़कड़ाती ठंड में प्रातः छह बजे ही नहा-धोकर पैदल जाते थे। इनरटैंपुल लायब्रेरी जाकर वहीं सत्रह घंटे अध्ययन करते और जब परीक्षाफल निकला तो वल्लभ भाई पटेल प्रथम श्रेणी में प्रथम थे। एक भारतीय छात्र की यह सफलता देखकर सभी दंग रह गए।

सर्वोपरि शक्ति चरित्र

चंद्रगुप्त को इस बात की पूर्ण आशंका बनी हुई थी कि उसकी सीमित शक्ति नंद-वंश का मुकाबला न कर सकेगी। सीधे आक्रमण का साहस न हो रहा था। अंत में उसने अपनी आशंका

गुरु कौटिल्य से व्यक्त कर ही दी। महापंडित कौटिल्य को पद्मनंद की आंतरिक कमजोरियों का पता था। शिष्य के अधीर वचन सुनकर वे मुस्कराए, फिर गंभीर वाणी में बोले— **"इंद्रियवशवर्ती चतुरंगवानपि विनश्यति"** अर्थात् "किसी के पास विशाल चतुरंगिनी सेना हो, किंतु चरित्र न हो तो अपनी इस दुर्बलता के कारण वह अवश्य नष्ट हो जाता है।" चंद्रगुप्त गुरुदेव के आशय को समझ गया। उसने मगध पर आक्रमण कर दिया और विजय भी पाई।

तपसा राष्ट्रं विरक्षति

कच ने गुरु शुक्राचार्य को प्रणाम किया और विनीत भाव से अपने स्थान पर बैठ गया। सूक्ष्मदर्शी गुरु ने शिष्य की चिंता पहचानी। उन्होंने प्रश्न किया—"कच तुम्हारे मन में कोई जिज्ञासा हो तो कहो। कुछ चिंतित से जान पड़ते हो, ऐसा क्या कारण उत्पन्न हुआ ?" शिष्य ने आंतरिक भाव को व्यक्त करते हुए कहा—"देव ! प्रजा न जाने क्यों अशांत है, लोग धर्म और संस्कृति की उपेक्षा करने लगे हैं, कहीं ऐसा न हो कि अनार्य इस पवित्र भूमि पर भी आक्रमण कर दें। रक्षा किस तरह हो ? इसका उपाय समझ में नहीं आता।" शुक्राचार्य ने उत्तर दिया—**"तपसा राष्ट्रं विरक्षति"**—"तात ! तप की शक्ति से राष्ट्रों की रक्षा होती है। संस्कृति और आदर्शों की रक्षा भी तप से भी संभव है। जाओ प्रजा को तपश्चर्या की ओर प्रेरित करो, तो फिर विनाश की कोई आशंका न रहेगी।"

कच गुरु के उत्तर से बहुत संतुष्ट हुआ।

समाज सेवा की योग्यता

धर्म दीक्षा का शिविर समाप्त हुआ। सारे भिक्षु अपनी-अपनी रुचि की दिशा में परिव्रज्या के लिए निकल गए। देव-वर्धन नामक भिक्षु भी गौतम बुद्ध के सामने उपस्थित हुआ। भूमिष्ठ प्रणाम करने के उपरांत उसने अति विनीत होकर प्रार्थना की—"भगवन्, मेरी

इच्छा है कि मैं कलिंग जाकर संघ का प्रचार करूँ। कलिंग का नाम सुनकर बुद्ध ने आँखें ऊपर उठाईं। देववर्धन को पास बिठाया। स्नेह से शीश पर आशीर्वाद का हाथ फेरते हुए बोले—"वत्स ! वहाँ के लोग बड़े अधर्मी और ईर्ष्यालु हैं, वे मिथ्या दोष लगाकर तुम्हें सताएँगे, गालियाँ देंगे, इसलिए वहाँ जाने का इरादा बदल डालो।"

भिक्षु ने उसी विनय के साथ कहा—"भगवन् गालियाँ देंगे तो क्या हुआ, मारेंगे तो नहीं, मैं उनकी बातों पर रोष न करूँगा, अपने मार्ग से विचलित भी न होऊँगा।" तथागत कहने लगे—"तात, इसमें भी संदेह नहीं, वे आततायी भी हैं, तुम्हें मार भी सकते हैं।" देववर्धन फिर भी दृढ़ रहा। उसने कहा—"देव, थोड़े दंड से इस शरीर का बिगड़ता क्या है ? मारेंगे तो भी बुरा नहीं, पर धर्म का प्रसार तो अधर्मियों के बीच ही किया जाता है।"

"पर वे तुम्हें जान से मार देंगे, देववर्धन ! मैंने उनकी निर्दयता देखी है"—बुद्ध ने कहा। "तो क्या हुआ, भगवन् ! आपने ही तो कहा है "यह शरीर धर्म-कार्य में लग जाए तो पुण्य ही होता है, इस तरह तो वे लोग मेरे साथ उपकार ही करेंगे।" तथागत भगवान् बुद्ध शिष्य के उत्तर से संतुष्ट हुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया और विदा करते हुए बोले—"वत्स ! समाज-सेवी की सच्ची योग्यता है तुममें, तुम निश्चय ही वहाँ धर्म-प्रचार कर सकोगे।"

सब सत्यों का सत्य

बड़ौदा कालेज के एक समारोह में छात्रों ने महर्षि अरविंद से जो तत्कालीन प्रिंसिपल थे, पूछा—"सब सत्यों का सत्य क्या है ?" महर्षि ने छात्रों से कहा—"सब सत्यों का निचोड़ तुम्हारे सामने सिर्फ एक ही है कि निर्बलता से बड़ा पाप जीवन में कुछ नहीं। यदि तुम समर्थ, स्वस्थ और बलवान् बन गए, तो संसार को जीत लोगे। बड़े से बड़े गौरव को अनायास ही जीत लोगे।"

दानवता पर मानवता की जीत

कटक के उड़िया बाजार में एक बार भयंकर प्लेग फैला। प्लेग नगर के अन्य मुहल्लों में भी था, किंतु उड़िया बाजार सर्वाधिक गंदी बस्ती होने के कारण महामारी का प्रकोप वहीं अधिक हुआ। बाबूपाड़ा ही एक मात्र ऐसा स्थान था, जो उससे अछूता रहा। संपन्न व्यक्तियों की साफ-सुथरी बस्ती थी, इसलिए महामारी वहाँ प्रवेश न पा सकी।

बाबूपाड़ा के कम उम्र के बच्चों ने एक सेवादल तैयार किया। १२ वर्षीय एक छात्र उनका नेता था। यह सेवा दल बीमारी वाले इलाकों में घूम-घूमकर सेवा कार्य—सफाई, रोगियों की सेवा-सुश्रूषा और औषधि लाने का काम किया करता था।

इसी मुहल्ले में हैदर नाम का एक खूँखार मुसलमान भी रहता था। मुहल्ले वाले उससे बड़ा भय खाते थे। कई बार वह जेल की सजा काट चुका था। बाबूपाड़ा में अधिकांश वे वकील रहते थे, जिन्होंने उसे सजा दिलाई थी, उसे इसलिए बाबूपाड़ा को तो वह अपना परम शत्रु मानता था।

उसी मुहल्ले के लड़के उड़िया बाजार में जन-प्रिय हों यह बात हैदर को काँटे की तरह चुभी। उसने सेवादल के लड़कों को बुरी तरह धमकाकर भगा दिया। लड़कों में दुबारा उस मुहल्ले में प्रवेश करने की हिम्मत न रही, पर उनके नेता में ऐसी दृढ़ता थी कि वह नहीं डरा और सेवा कार्यों के लिए बराबर मुहल्ले में आता रहा।

आखिर एक दिन हैदर का घर भी महामारी की लपेट में आ गया। हैदर के बहुत प्रयत्न करने पर भी न तो उसके घर कोई डॉक्टर आया, न किसी ने औषधि दी। निराश घर लौटा तो यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उसी सेवा-दल के लड़के घर की सफाई में जुटे हैं। उनका नेता उसके बच्चे और बीवी को दवा पिला रहे हैं।

हैदर का हृदय पिघल गया। दानवता पर मानवता ने विजय पाई। आँसू बहाता वह लड़कों के पैरों में गिरकर क्षमा माँगने लगा। लड़के ने उसे उठाया और कहा—"तुमने ऐसा अपराध ही क्या किया है, जिसके लिए क्षमा किया जाए। मित्र के पिता हो इसलिए तुम मेरे लिए भी पिता तुल्य हो, मुझे आशीर्वाद पाने का अधिकार है, क्षमा करने का नहीं।" हैदर की सारी कटुता धुल गई। वह एक सज्जन व्यक्ति बन गया। उसकी कही अंत में सच हुई। वही बालक बड़ा होकर भारतवर्ष का महान् नेता सुभाषचंद्र बोस के नाम से सारे विश्व में विख्यात हुआ।

फेल होना अच्छा, नकल नहीं

गाँधी जी बचपन में कोई प्रखर बुद्धि विद्यार्थी न थे, पर उन्हें आचरण में सच्चाई और चरित्र का सबसे अधिक ध्यान रहता था।

एक बार स्कूल-इंस्पेक्टर मुआयने के लिए आए। गाँधी जी की कक्षा की परीक्षा हुई। उसमें ५ अक्षरों की स्पेलिंग लिखने को दी गई। गाँधीजी ने उनमें से एक गलत लिख दी। कक्षा अध्यापक ने इशारा किया कि आगे वाले विद्यार्थी की नकल कर लो, पर गाँधी जी ने नकल नहीं की।

परीक्षा में सब उत्तीर्ण हुए, केवल गाँधी जी अनुत्तीर्ण रहे। इंस्पेक्टर चला गया तो मास्टर ने गाँधी जी को डाँट लगाई। गाँधी जी ने उत्तर दिया—"मास्टर साहब ! दूसरे की नकल करके पास होने की अपेक्षा, अपनी बुद्धि से अनुत्तीर्ण होना अच्छा है। झूठी सफलता के लिए अपनी आत्मा की सच्चाई को बेचकर, आत्महीनता का दुःख उठाना मेरे लिए संभव नहीं।" गाँधी जी के इस कथन पर अध्यापक उनकी अल्पायु में नैतिकता की अडिग आस्था के लिए आश्चर्यचकित रह गया।

साहस की विजय

नडियाद (गुजरात) की एक पाठशाला का नियम था, जो भी विद्यार्थी उसमें पढ़ते हैं, वह एक निश्चित दुकान से ही पुस्तकें खरीदा करें। बात यह थी कि वह दुकान विद्यालय के ही एक अध्यापक की थी। दुकान से उसे लाभ होता था, इसलिए इस प्रकार की आज्ञा प्रसारित की गई थी।

करमसद ग्राम का एक ग्रामीण बालक भी उसमें भरती हुआ, पर उसे यह बंधन अप्रिय ही नहीं अनैतिक भी लगा। विशेषकर उस स्थिति में, जबकि यह प्रतिबंध स्वार्थपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के लिए था। स्वभाव से नटखट उस विद्यार्थी ने आंदोलन उठाया—कोई इस दुकान से पुस्तकें न खरीदे।

आंदोलन तीव्रता पकड़ गया। सब विद्यार्थियों ने उसमें भाग लिया। अंत में शिक्षक महोदय को झुकना ही पड़ा। प्रारंभ से ही बुराइयों के विरुद्ध संगठित मोर्चा जमाने वाला यह बालक और कोई नहीं, सरदार वल्लभ भाई पटेल थे।

बालक दल

बारह-तेरह वर्ष के एक लड़के ने 'बालक-दल' की स्थापना की। उसमें मुहल्ले के सभी पढ़ने वाले बच्चे शामिल हुए। छोटे-छोटे बच्चे दीपावली, होली, श्रावणी, दशहरा आदि पर सभाएँ आयोजित किया करते थे और वह १२ वर्ष का बालक प्रवचन किया-करता था। उसके प्रवचन में महाभारत और भागवत की कहानियाँ भी होती थीं और हिंदू धर्म के भावनात्मक आदर्शों का विवेचन भी। बच्चे का प्रवचन सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते थे और कहने लगते थे कि, यह बच्चा एक दिन प्रख्यात पंडित बनेगा।

महामना मदन मोहन मालवीय हिंदू संस्कृति के प्राण कहे जाते हैं। यह बालक और कोई नहीं—मालवीय जी ही थे।

छलाँग नहीं

त्रिचनापल्ली का एक छात्र विद्यालय में प्रवेश लेने गया। नियमानुसार उसकी परीक्षा ली गई। योग्यता देखकर अध्यापक ने सिफारिश की कि इस विद्यार्थी की बुद्धि और विद्या इतनी प्रखर है कि उसे कॉलेज में दाखिला मिलना चाहिए।

हाईस्कूल के प्राध्यापक ने लड़के को बुलाया और उस सलाह से अवगत कराया। विद्यार्थी ने जवाब दिया—"मास्टर साहब ! परीक्षा में अधिक अंक पाने का यह अर्थ नहीं कि जो एक क्रम-व्यवस्था बनी है, उसे तोड़ा जाए। एक-एक सीढ़ी पर चढ़ते हुए ही उन्नति की अंतिम बिंदु तक पहुँचा जा सकता है, तो फिर मैं ही बीच से छलाँग क्यों लगाऊँ ?"

स्वल्प श्रम से मिलने वाली सफलता को ठुकरा देने वाले इस छात्र को आज सब चंद्रशेखर वेंकट रमन के नाम से जानते हैं। इन्हें वैज्ञानिक अनुसंधानों पर नोबुल प्राइज मिला है।

निंदा असह्य

कॉलेज के पादरी हिंदू धर्म की बुराई किया करते। एक बालक को यह बात सहन न हुई। उसने खड़े होकर पूछा—"महोदय ! क्या ईसाई धर्म दूसरों धर्मों की निंदा करना ही सिखाता है ?"

पादरी खीज उठा, उसने कहा—"और क्या हिंदू धर्म दूसरे की प्रशंसा करता है ?"

बालक ने तटस्थता से उत्तर दिया—"हाँ ! हमारा धर्म किसी भी धर्म की बुराई नहीं करता। गीता में हमारे भगवान् कृष्ण ने स्वयं कहा है—किसी भी देवता की उपासना करने से मेरी ही उपासना होती है। अब आप ही बताइए हमारा धर्म दूसरे धर्मों की निंदा कैसे कर सकता है ?"

पादरी को उत्तर न देते बना। भारतीय संस्कृति जिसकी रग-रग में बस रही थी, वह बालक दर्शन का प्रकांड पंडित हुआ, हम सब उन्हें डॉ० राधाकृष्णन के नाम से जानते हैं।

कर्तव्य के लिए दंड से क्या भय

बच्चा प्रतिदिन माँ के पाँव छूता और प्रसन्नतापूर्वक पाठशाला चला जाता। एक दिन भूल हो गई, विद्यालय पहुँचते-पहुँचते याद आई तो उल्टे पैरों घर लौट पड़ा। साथियों ने कहा—"अरे ! यह विद्यालय जाने का समय और तुम घर लौट रहे हो। अनुपस्थिति होने पर दंड मिलेगा, इसलिए स्कूल चलो।"

बच्चे ने कहा—"दंड मिलना ठीक है, पर दंड से बचने के लिए भूल न सुधारना अपनी आत्मा को दबाना होगा। क्या इस दंड से वह अधिक कष्टकर है ? बच्चा घर लौटा और माँ के पाँव छूकर क्षमा माँगी और तब फिर विद्यालय गया। विनायक दामोदर सावरकर वह विद्यार्थी थे, जिन्हें दंड का नहीं कर्तव्य में भूल होने का डर था।

मेरी साथिन

गाँधी जी गोलमेज़ कान्फ्रेंस में भाग लेने लंदन गए थे। अधिकारियों ने उनके कार्यक्रम में एक मनोरंजन नाच देखना भी रखा। जब गाँधी जी नाच देखने गए, तो किसी ने व्यंग्य से कहा—"गाँधी जी, आप भी अपना साथी चुन लीजिए।"

अपनी लाठी की ओर संकेत करते हुए बापू ने उत्तर दिया—"यह रही मेरी साथिन !" सारा हॉल हँसी से गूँज उठा।

बाप की गोद

बापू के जीवन की एक और घटना है। सेठ जमनालाल बजाज से वे बहुत स्नेह रखते थे। जमनालाल जी का शरीर कुछ अधिक मोटा था।

एक दिन जमनालाल ने साग्रह पूछा, "बापू जी ! आपका मुझ पर हार्दिक स्नेह है, किंतु मैं तो देवदास की तरह आपका पुत्र

बनना चाहता हूँ।" बापू जी ने हँसकर तत्काल उत्तर दिया—"सो तो सब ठीक है। लोग बेटे गोद लेते हैं, पर यहाँ तो यह स्थिति है कि बेटा बाप को गोद ले सकता है।"

दंड

रवींद्रनाथ टैगोर की अध्यक्षता में एक अध्यापक सम्मेलन हुआ। उसमें अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के साथ नैपाल बाबू भी थे।

एक दिन नैपाल बाबू घर जाते समय अपना डंडा वहीं भूल गए। दूसरे दिन टैगोर बाबू ने उन्हें संबोधित करते हुए कहा—"आजकल नैपाल बाबू बहुत भूल करने लगे हैं, दंड देना पड़ेगा।"

नैपाल बाबू बड़े परेशान हुए। गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा—"कल अपना दंड भूल गए थे, सो यह दंड लीजिए।"

जी नहीं

नंबूदरीपाद (केरल के पूर्व मुख्यमंत्री) से एक बार किसी पत्रकार ने पूछा—"क्या आप हमेशा हकलाते हैं ?"

नंबूदरीपाद ने विनोदपूर्वक उत्तर दिया—'नहीं जी ! केवल बोलते समय हकलाता हूँ।"

आधी कीमत

राहुल सांकृत्यायन की धर्मपत्नी की कलाई की घड़ी कहीं खो गई। वह उसके लिए बहुत दुःख कर रही थीं।

राहुल जी ने थोड़ी देर चुप रहकर पूछा—'तुम्हारी घड़ी कितने रुपए की थी ?" पत्नी बोली—"जी ! एक सौ अस्सी रुपए की।"

राहुल जी ने कहा—"कुछ दिन हो जाने पर चीज पुरानी हो जाती है और आधे दाम की रह जाती है, इसलिए तुम्हें भी आधा दुःख करना चाहिए और उतना दुःख तो तुम कर भी चुकी।" उनके कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि सब हँस पड़े। स्वयं उनकी धर्मपत्नी भी हँस पड़ीं।

शाबरी की फोटो

उर्दू के प्रसिद्ध शायर शौकत थानवी किसी मुशायरे में भाग ले रहे थे। अनवर शाबरी देवबंदी भी उसमें सम्मिलित थे। शाबरी बहुत काले थे और उनकी दाढ़ी बहुत भयानक-सी थी। जब एक फोटोग्राफर उनकी फोटो खींचने लगा, तो उन्होंने गजल पढ़ना बंद कर दिया और फोटोग्राफर से पूछा—"अरे भाई, मेरी तस्वीर खींचकर क्या करोगे ?"

शौकत थानवी बीच में बोल पड़े—"बच्चों को डराया करेंगे" सारी सभा कहकहों से गूँज उठी।

तीन चश्मे

आइंस्टाइन की जेब में तीन चश्मे देखकर किसी साथी ने प्रश्न किया—"तीन चश्मे किसलिए रखते हैं ?"

आइंस्टाइन ने जवाब दिया—"एक पास की वस्तु देखने के लिए, दूसरा दूर की वस्तु के लिए और यह तीसरा इन दोनों को ढूँढ़ने के लिए।"

नवाबी बनाम प्रेम

साहित्य में ख्याति प्राप्त होने से पूर्व मुंशी प्रेमचंद नवाब राय और धनपत राय के नाम से लिखा करते थे। कुछ दिन बाद अपना सही नाम लिखने लगे। एक दिन एक सज्जन ने पूछा—"आपने अब नवाब राय के नाम से लिखना क्यों बंद कर दिया ?" इस पर प्रेमचंद जी ने उत्तर दिया—"बगैर नवाबी के नवाब कैसा, अपने आप नवाब बनने से किसी ने मुझे नवाब बना भी तो नहीं दिया, और फिर भाई जो आनंद प्रेम में है, वह नवाबी में कहाँ ? बस समझ लीजिए—यह परिवर्तन मैंने क्यों किया है ?"

पत्रकारो गहनो गति

स्वतंत्रता आंदोलन के बाद गाँधी जी अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व के व्यक्ति बन गए थे। वे जहाँ भी जाते थे पत्रकार उनका पीछा

नहीं छोड़ते थे। बातचीत के दौरान एक बार एक पत्रकार ने पूछा—"बापू जी ! क्या आपको ख्याल है कि मृत्यु के बाद आप स्वर्ग जाएँगे ?" गाँधी जी एक सरल मुस्कान पत्रकारों पर बिखेरते हुए बोले—"मुझे नहीं मालूम मरने के बाद मुझे स्वर्ग मिलेगा या नरक, परंतु इतना अवश्य जानता हूँ कि जहाँ कहीं भी जाऊँगा पत्रकारों से भेंट अवश्य होगी......।"

कोई मानेगा नहीं

बर्नार्ड शॉ की एक रचना पर टिप्पणी करते हुए एक बार किसी महिला ने कहा—"आपकी यह रचना बड़ी खराब है, मुझे बिल्कुल पसंद नहीं आई।" बर्नार्ड शॉ ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"बहन जी, मैं भी आपसे पूर्णतया सहमत हूँ, पर संसार के लोग इतने कट्टर हैं कि हमारी, आपकी बात मानने को तैयार नहीं। बहुमत के आगे अल्पमत की कहाँ चलती है ?"

गरजते हैं वह बरसते भी हैं

सुकरात का दांपत्य जीवन मैत्रीपूर्ण न था। इनकी पत्नी से कभी न बनती थी। वे इतनी कर्कशा थीं कि सुकरात को बुरा से बुरा कह डालती थीं। एक बार सुकरात अपने मित्रों के साथ आवश्यक विचार-विनिमय कर रहे थे। श्रीमती जी से यह दृश्य देखा न गया। क्रोध से लाल-पीली हो उठीं और जब क्रोध न सँभला तो बर्तन से छत पर से ही धोया हुआ गंदा पानी सबके ऊपर बिखेर दिया, सबके कपड़ों में कीचड़ लग गई। यह देखकर सुकरात अपने साथियों से बोले—"लो भाई ! आप लोग कहते थे—जो गरजते हैं वह बरसते नहीं। पर आज तो बादल गरज भी रहे हैं और बरस भी रहे हैं।" मित्र मंडली ठहाका मारकर हँस पड़ी और आगे का काम शुरू कर दिया।

पागलखाना

गाँधी जी के जीवन की ही दूसरी घटना है। वे गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए लंदन गए हुए थे। एक भारतीय युवक

अपनी अमेरिकन धर्मपत्नी के साथ उनसे मिलने आया। उनकी धर्मपत्नी ने पूछा—"बापू जी! आप अमेरिका कब आएँगे ? वहाँ के लोग तो आपके लिए पागल हो रहे हैं।" विनोद प्रिय बापू तुरंत बोले—"तो क्या मुझे भी पागलखाने में ले जाने का इरादा है ?" यह सुनकर सब लोग हँस पड़े।

पहचान

प्रसिद्ध मराठी लेखक श्री आप्टे बड़े उदार, दयालु और हँसमुख थे। गरीबों को देखकर पिघल जाते थे। एक बार अपने घर के सामने उन्होंने उदास बैठे हुए बालक को देखा। उन्हें दया आ गई, समझे कोई भूखा गरीब बालक होगा। उसे अपनी धर्मपत्नी के पास ले गए और बोले—"पहले इस बालक को भोजन कराओ, पीछे मैं कर लूँगा।"

उनकी पत्नी उनकी गंभीर एकाग्रता को आश्चर्य से देखती रहीं और फिर बोलीं—"आप इसे पहचानते नहीं, यह तो अपना बेटा मधु है।"

भिक्षा

कविगुरु रवींद्रनाथ टैगोर का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। डॉक्टरों का कहना था, पूर्ण स्वास्थ्य लाभ के लिए उन्हें पूर्ण विश्राम करना चाहिए। आवश्यकता से अधिक परिश्रम नहीं करना चाहिए।

महाकवि ने अपना नियम न बदला। जो काम जिस समय निर्धारित था, उसे ठीक उसी समय पूरा करने में उन्होंने कोई ढील न दी। शांति-निकेतन के प्रबंधकर्ताओं को इससे काफी चिंता हुई।

तार देकर बापू बुलाए गए। गाँधी जी आए और कविगुरु टैगोर से आते ही प्रश्न किया—"मुझे आपसे एक भीख चाहिए।" गुरुदेव ने बापू की बात मान ली। बापू ने माँगा—"आपको भोजन के बाद एक घंटा पूरा आराम करना होगा।"

एक दिन गुरुदेव भोजन के उपरांत विश्राम कर रहे थे, उसी बीच उनसे मिलने के लिए आचार्य क्षितिमोहन सेन जा पहुँचे। दरवाजे के भीतर से टैगोर ने उन्हें पहचानते हुए पूछा—"ठाकुर दा आए हैं क्या ?"

"हाँ, पर आप क्या कर रहे हैं ?" उन्होंने प्रश्न किया।

गुरुदेव ने सरल मुस्कान के साथ कहा—"गाँधी जी को भिक्षा दे रहा हूँ।"

उलटा परिणाम

सुविख्यात अंग्रेज नाटककार जार्ज बर्नार्ड शॉ से एक दिन एक अत्यंत सुंदर अभिनेत्री मिलने गई। बात-चीत के दौरान उसने प्रस्ताव किया—"यदि आप मुझसे शादी कर लें तो हमारे जो बच्चा पैदा होगा, वह मुझ जैसा सुंदर और आप जैसा बुद्धिमान् होगा।"

बर्नार्ड शॉ का चेहरा भद्दा था, उन्होंने हँसकर उत्तर दिया—"देवी जी प्रस्ताव बुरा नहीं है, पर यदि परिणाम इससे उलटा हुआ तो ? मुझ जैसा कुरूप और आप जैसा नासमझ निकला तो ?" देवी जी कुछ न बोल सकीं, पर उपस्थित लोग हँस पड़े।

दूसरा भी

नेताजी सुभाषचंद्र बोस किसी सभा में भाषण दे रहे थे। विरोधी पार्टी के किसी आदमी ने भीड़ में से उनकी ओर जूता फेंका। इसके पहले कि वहाँ कोई गड़बड़ी फैले नेताजी ने कहा—"जिन सज्जन ने यह फेंका है, कृपा करके इसका जोड़ा भी फेंक दें। नहीं तो यह मेरे लिए बेकार ही रहेगा।" उपस्थित जन-समुदाय हँस पड़ा और आगे की कार्यवाही शुरू हो गई।

तीनों आवश्यक

प्रसिद्ध अमेरिकी उद्योगपति एंड्रयू कारनेगी से किसी ने प्रश्न किया—"किसी उद्योग में सफलता के लिए पूँजी, श्रम और योग्यता में से आप किसे अधिक महत्त्व देते हैं ?"

"आपका प्रश्न तो ऐसा ही है, जैसे कोई कहे कि तीन पैरों की तिपाई में से किस पैर का उपयोग और महत्त्व अधिक है।" कारनेगी ने हँसते हुए उत्तर दिया।

भागो

बापू बकरी का दूध पिया करते थे। एक बार किसी अध्यापक ने उनसे कहा—"बापू ! पशु का दूध पीने से मनुष्य में भी पशु के गुण आ जाते हैं, बकरी का दूध पीना ठीक नहीं।" महात्मा जी के सोने का समय हो गया था। लेटते हुए बोले—"हाँ, भाई सच कहते हो, बकरी का दूध पीने से मेरे भी सींग निकल रहे हैं, भागो, नहीं तो सींग मार दूँगा।"

सारूप्य

स्वामी विवेकानंद मद्रास गए हुए थे। कानून शास्त्र के एक कॉलेज का अवलोकन करते हुए, उनकी दृष्टि बरामदे की दीवार पर लगे श्रीकृष्ण के चित्र पर पड़ी। अनजाने ही वे एक विद्यार्थी से पूछ बैठे—"कृष्ण भगवान् के चित्र में नीले आसमानी रंग का प्रयोग क्यों किया जाता है ?"

विद्यार्थी ने तुरंत उत्तर दिया—"जिस प्रकार आकाश का विस्तार अनादि और अनंत है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के गुणों की भी कोई सीमा नहीं। इसीलिए आसमानी रंग का उपयोग किया जाता है। इस गूढ़ रहस्यमय उत्तर को सुनकर स्वामी जी बहुत प्रसन्न हुए। वही विद्यार्थी आज चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के नाम से सुविख्यात है।

परोपकार

थियोसोफिकल सोसाइटी की संस्थापिका मैडम ब्लैवट्स्की प्रथम श्रेणी का टिकट लेकर हवाई जहाज पर चढ़ने की प्रतीक्षा में थीं। उन्हें होवर बंदरगाह से न्यूयार्क जाना था।

इतने में ही उन्हें एक स्त्री का रुदन स्वर सुनाई पड़ा। करुण हृदय ब्लैवट्स्की ने उक्त स्त्री से रोने का कारण पूछा। वह

बोली—"बहन ! मेरे पति ने मुझे अमेरिका जाने के लिए पैसे भेजे थे, किंतु किसी धूर्त अधिकारी ने पैसे लेकर बनावटी टिकट दे दिए हैं और जहाज जाने की तैयारी में है।"

उस धोखेबाज व्यक्ति को खोजने का समय न था। ब्लैवट्स्की ने अपना प्रथम श्रेणी का टिकट वापस करके चार तृतीय श्रेणी के टिकट क्रय किए और कहा—"चलो बहन ! जहाज छूटने ही वाला है।"

समय की कीमत

बालक को शाला पहुँचने में नित्य ही देर होती। यों वह नवीं कक्षा का विद्यार्थी था, पर कुछ लापरवाही, कुछ आलस्य और कुछ समय की अनियमितता। कभी-कभी तो वह शीघ्रता में कोई पुस्तक अथवा कोई कापी ही भूल जाता।

एक दिन उसके चाचा घर पर आए। माता-पिता ने समस्या उनके सामने रखी। उन्होंने अपनी कलाई से घड़ी उतारी और बालक की कलाई पर बाँधते हुए बोले—"यह है तुम्हारे रोग की दवा। याद रखो बेटा यदि व्यक्तित्व को किसी महानता के साँचे में ढालना है, तो समय की नियमितता सबसे प्रमुख बात है।"

बालक की दिनचर्या उसी दिन से नियमित होती गई। वह प्रतिभावान् बालक था प्रसिद्ध इंजीनियर विश्वेश्वरैया।

अमित्र का मित्र

जिन अपराधियों को आजीवन कारावास का दंड दिया जाता है—उन्हें प्रार्थना का अंतिम अवसर दिया जाता है। ऐसे प्रार्थना पत्रों के साथ स्वभावतः ही किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की सिफारिश भी होती है।

ऐसा ही एक प्रार्थना पत्र अमेरिका के राष्ट्रपति के समक्ष आया, किंतु उसके साथ कोई सिफारिश पत्र नहीं था। राष्ट्रपति ने अपने निजी सचिव से पूछा—"क्या इस व्यक्ति का कोई मित्र नहीं है ?" "मालूम तो ऐसा ही पड़ता है" उत्तर मिला।

राष्ट्रपति कुछ क्षण मौन रहे। फिर उस क्षमायाचना के पत्र को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा, "जिसका कोई मित्र नहीं, उसका मैं मित्र बनता हूँ। अदना से अदना आदमी को भी न्याय मिलना चाहिए। यह मेरा कर्तव्य है।" वे राष्ट्रपति थे श्री अब्राहम लिंकन।

भावनाओं का आदर

सुविख्यात इतिहासकार, सर विंसेंट स्मिथ—इटावा जिले में एक दौरे पर गए। उस समय वे आगरा के कमिश्नर थे। जिलाधीश ने उनके सम्मान में भोज दिया, जिसमें गौ मांस भी बनाया गया था।

सर विंसेंट को जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने उसे भोजन में से हटाते हुए कहा—"इस देश की अधिकांश जनता अपनी धार्मिक भावना के कारण गाय को मातृ स्वरूप मानकर इसका सेवन नहीं करती। अतः मैं जब तक यहाँ हूँ, इसका सेवन नहीं करूँगा। देशवासियों की प्रत्येक भावना का आदर करना मेरा कर्तव्य है।" इसे कहते हैं दृष्टिकोण की विशालता एवं विशदता।

बूट पालिश

मेसाच्युसेट्स के सीनेटर चार्ल्स समर, एक दिन प्रातःकाल ही अमेरिका के राष्ट्रपति श्री अब्राहम लिंकन से मिलने जा पहुँचे।

पहुँचने पर देखा, लिंकन साहब बैठे हुए बड़ी मस्ती से अपने जूतों पर पालिश कर रहे थे।

मित्र ने कहा—"आप अपने जूतों पर स्वयं ही पालिश क्यों कर रहे हैं ? क्या कोई भृत्य नहीं ?"

अब्राहम लिंकन मुस्कराते हुए बोले, "अपने जूतों पर नहीं, तो क्या किसी और के जूतों पर पालिश करूँ ? अपना काम आप

करने में संकोच ही क्या है ? छोटी-छोटी निजी सेवाओं के लिए दूसरों पर निर्भर रहना किसी भी प्रकार ठीक नहीं।"

रोने का कारण

बापू तब बालक ही थे। एक दिन स्कूल पहुँचने में देर हो गई। अध्यापक के कारण पूछने पर उन्होंने बताया, "बादलों की वजह से समय का कुछ अनुमान न लग सका और देर हो गई।"

किंतु अध्यापक को विश्वास न हुआ और उन्होंने गाँधी जी पर एक आना फाइन कर दिया।

बालक बापू गंभीर हो गए और उनके नेत्रों से झर-झर अश्रु धारा झरने लगी।

अध्यापक ने कहा—"तुम तो अमीर बाप के बेटे हो। फिर भी एक आने के लिए रोते हो।"

सिसकियों में से मोहनदास का स्वर फूटा, "एक आने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए रो रहा हूँ कि आपने मेरी बात का विश्वास नहीं किया।"

संकल्प शक्ति

राजा राममोहन राय तब बालक ही थे। उन दिनों सती प्रथा पूरे जोर पर थी। उनके बड़े भाई की मृत्यु हो गई हो, प्रथा के अनुसार उनकी भाभी को सती होने पर बाध्य किया गया।

धधकती ज्वालाओं में जिंदा शरीर को झोंक दिया गया। वेदना से छटपटाकर वह चिता से बाहर दौड़ी। पर क्रूर प्रथा पालकों ने उसे बाँसों से ढकेलकर फिर चिता में डाल दिया।

जीवन का यह करुण-वीभत्स अंत देखा न गया। हृदय चीत्कारें सुनकर विगलित हो गया। मस्तिष्क में एक विरोध की भावना उठी, उस अमानवीय प्रथा के प्रति। उन्होंने संकल्प लिया—"जब तक इस पिशाचिनी प्रथा का अंत न कर दूँगा, चैन से न बैठूँगा" और उन्होंने वह कर दिखाया।

सादगी में विद्वता

भारत के प्रथम राष्ट्रपति स्व० श्री राजेंद्र प्रसाद ने प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया। सादगी उनके व्यक्तित्त्व की अपनी एक महत् विशेषता थी।

जब पहले दिन वे कक्षा में गये तो अचकन, पाजामा और टोपी पहने हुए थे। शेष सब लड़के कोट, पतलून तथा टाई में थे।

वे सब लड़कों को देखकर समझे कि इनमें अधिकांश एंग्लो इंडियन होंगे। और उन्हें देखकर सब लड़कों ने ऐसा भाव व्यक्त किया, जैसे पूछ रहे हो, "कहाँ से रस्सा तुड़ाकर भाग आए हो ?" बहुत मजाक बनाया सबने उनका।

जब कक्षा में अध्यापक आए और सबका नाम व परिचय सबको मिला तो दोनों ही आश्चर्य में थे।

राजेंद्र बाबू इसलिए आश्चर्यचकित थे कि उन्हें मालूम पड़ा कि सभी विद्यार्थी भारतीय ही थे और शेष विद्यार्थी इसलिए आश्चर्यचकित थे कि राजेंद्र बाबू ने 'जिन्हें वे निरा गँवार ही समझ रहे थे'—विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया था।

विद्यार्थी अब आश्चर्यचकित थे। उनकी सादगी तथा भारतीय वेशभूषा में छिपी ज्ञान गरिमा पर और राजेंद्र बाबू दयार्द्र हो उठे थे, उन विद्यार्थियों की पाश्चात्य सभ्यता की नकल करने में गौरव की अनुभूति करने वाली प्रवृत्ति पर।

सच्ची लगन

जिस समय नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म हुआ—उसकी मातृभूमि कार्सिका फ्रांस के अधिकार में आ चुकी थी। फ्रांसीसियों के क्रूर अत्याचारों से कार्सिका की जनता त्राहि-त्राहि कर उठी थी।

इस युद्ध में उसके पिता ने शत्रु से लड़ते-लड़ते वीरगति पाई थी। उसके पश्चात् उसकी माँ ने युद्ध में भाग लिया, वह

भी वीरता के साथ लड़ी। युद्ध में भाग लेना मात्र—उतने आश्चर्य की बात नहीं है—जितनी यह बात कि उस समय नेपोलियन उसके गर्भ में था।

और जब वह मात्र पाँच वर्ष का था, तब उसकी माँ ने उसे वह कहानी सुनाई, जिनमें फ्रांसीसियों के अत्याचार, उत्पीड़न तथा बर्बरता की गाथा थी।

बालक, जो गर्भ से ही वीरता के रस का पोषण पा रहा था—सब कुछ सुनकर उत्तेजित हो उठा, उसका शरीर आक्रोश से काँपने लगा और तभी उसने अपनी माँ से कहा—"माँ ! मैं सारे फ्रांस को अपने पैरों तले कुचल डालूँगा। अपनी मातृभूमि के उत्पीड़न तथा अपमान का बदला लूँगा।"

और अपने युवा जीवन में ही उसने अपने कहे इन शब्दों की सार्थकता प्रकट कर दिखाई। किशोर अवस्था में ही वह एक सैनिक शिक्षण शाला में प्रविष्ट हुआ। लगन तथा परिश्रम के बल पर उसे शीघ्र ही एक टुकड़ी का नायक बना दिया गया और फिर तो सफलता की सीढ़ियाँ तेजी से पार करता हुआ, वह फ्रांस का सर्वे-सर्वा और अंत में विश्व विजेता बन गया।

ऐसी होती है सच्ची लगन तथा ध्येय के प्रति निष्ठा, जो मनुष्य को धरातल से उठाकर आकाश की ऊँचाइयों तक पहुँचा देती है।

प्रतीक्षा

श्री वल्लभ भाई पटेल के माता-पिता धनवान् न थे। अतः उच्च शिक्षा की व्यवस्था वे न कर सके, किंतु वल्लभ भाई की प्रबल आकांक्षा बैरिस्टर बनने की थी।

अब वल्लभ भाई ने सोचा स्वयं ही अपने लिए पहाड़ काटकर राह बनानी चाहिए। अतः मुख्तारी की परीक्षा पास की और बोरसद जाकर प्रैक्टिस करने लगे। बड़े परिश्रम तथा मितव्ययता के फलस्वरूप उन्होंने कुछ रुपया बहुत दिनों में

एकत्रित कर पाया। अब उन्होंने विलायत जाने के लिए पासपोर्ट प्राप्त करने का प्रयत्न किया। बड़ी कोशिशों के बाद उन्हें वह मिला, किंतु वह पड़ा उनके बड़े भाई श्री विट्ठल भाई के हाथ। उनका मन ललचा आया। बड़े भाई वी० जे० पटेल थे। अतः बड़े भाई ने कहा—"मैं बड़ा हूँ। पहले मुझे बैरिस्ट्री पास कर आने दो। तुम बाद में जाना।"

इतने वर्षों का श्रम, साधना प्रयत्न तथा प्रतीक्षा सब निरर्थक गया, किंतु वल्लभ भाई वास्तव में ही आदर्श व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होंने सहर्ष वह पासपोर्ट अपने बड़े भाई को दे दिया और स्वयं तीन वर्ष पश्चात्, जब वे लौट आये—तब गये।

दया

ग्यारह वर्षीय बालक ने कहा—"पिताजी मुझे पाँच रुपये दे दीजिए।" पिता ने पूछा—"काहे के लिए चाहिए ?" तो उत्तर मिला, "बस आप तो दे दीजिए।"

पिता ने रुपए तो दे दिए, किंतु पीछे से नौकर को भेजा कि देखकर आओ यह रुपयों का क्या करता है ?

बालक गया और अपने एक अत्यंत निर्धन साथी को पाठ्य पुस्तकें खरीद कर दे दीं।

यह बालक और कोई नहीं, हमारे प्रसिद्ध नेता श्री देशबंधु चित्तरंजनदास थे। नौकर से पूरी बात मालूम होने पर पिता ने उन्हें बहुत प्यार किया।

आगे चलकर उनकी यह प्रवृत्ति और भी विकसित हुई। अपनी आय में से कई विद्यार्थियों की सहायता करते, कई विधवाओं तथा अनाथ बच्चों को नियमित रूप से आर्थिक सहयोग देते रहे। उनका यह क्रम अंत तक नहीं टूटा।

आत्मवत् सर्व जीवेषु

अमेरिका के राष्ट्रपति श्री अब्राहम लिंकन बड़े ही दयालु तथा उदार स्वभाव के थे। एक दिन वे न्यूयार्क में अपने कुछ मित्रों के

साथ सड़क पर जा रहे थे। समय रात्रि का था तथा मौसम सर्दी का।

मार्ग में उन्होंने देखा एक कुत्ते का पिल्ला ठंड के मारे कुकड़ा जा रहा है तथा 'कूँ-कूँ' कर रहा है। वे आगे बढ़े और उसे उठा लिया। बड़े प्यार से अपने कोट के नीचे छिपा लिया।

साथियों ने उनसे कहा—"आप इस गंदे पिल्ले को कोट में रखे हैं। आपका सूट गंदा हो जाएगा।"

तब लिंकन महोदय ने कहा—"कोट गंदा होने पर मुझे उतना दुःख नहीं होगा—जितना यह सोचकर होगा, कि एक सर्दी से ठिठुरते प्राणी की रक्षा, मैंने नहीं की, जबकि मैं कर सकता था।"

संत सन्त सनृत

बाल गंगाधर तिलक तब बालक ही थे। कक्षा में सुलेख लिखाया गया। सब छात्रों की कापियों से तिलक की कापी में एक विलक्षण बात थी।

लेख में 'सन्त' शब्द तीन बार आया था। तिलक ने तीनों बार तीन प्रकार से यह शब्द लिखा था। संत-सन्त तथा सनृत। शिक्षक ने प्रथम को सही माना और शेष दो को गलत मानकर काट दिया।

तिलक के स्वभाव में दबंगपन प्रारंभ से ही था। गलत बात को वे कभी भी स्वीकार न करते थे। यही गुण उनमें आगे चलकर स्वतंत्रता आंदोलन के समय दिलेरी तथा अदम्य साहस के रूप में विकसित हुआ और गर्जना के साथ उन्होंने उद्घोष किया—"स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।"

उस दिन भी उन्होंने कहा—"मेरे शेष दो शब्द भी ठीक हैं। आप इन्हें सही कीजिए।" अध्यापक ने कहा—"नहीं हैं ठीक।"

किंतु वे नहीं माने और छुट्टी होने के पश्चात् भी अध्यापक के पीछे ही पड़े रहे। पिंड तब छोड़ा, जब उससे दोनों

स्थान के काटे गए शब्द सही करवा लिए। सत्य बात मनवाने के प्रति ऐसी दृढ़ता, चरित्र की अपनी एक प्रशंसनीय विशेषता है।

एक पैसे का मूल्य

महात्मा गाँधी हरिजनों के लिए चंदा एकत्रित कर रहे थे। जहाँ भाषण होता, वहाँ उनकी दान-पेटी भी साथ रहती। एक बार भाषण समाप्त होते ही उन्होंने दान देने का आग्रह किया। उपस्थित जनता ने खूब बढ़-चढ़कर दान दिया। सारा धन लेकर बापू पेटी में डालने लगे, तभी उसमें से एक पैसा नीचे गिर गया। इधर भीड़ उस पैसे को रौंदती हुई चल पड़ी। बापू भीड़ की परवाह किए बिना वह ढूँढ़ने लगे। पास खड़े एक व्यक्ति ने कहा—"बापू जी, भीड़ अधिक है, आप उस पैसे के बदले यह एक रुपया लीजिए, उस पैसे को जाने दीजिए।" बापू ने उस सज्जन की ओर मुखातिब होकर कहा—"भाई ! यह धन संपूर्ण राष्ट्र का है, उसमें से यदि एक पैसा खो गया, तो वह समाज और राष्ट्र के प्रति मेरा विश्वासघात होगा।" इतना कहकर वे फिर पैसा ढूँढ़ने लगे। जब तक वह पैसा नहीं मिल गया बापू उस स्थान से हटे नहीं।

धर्म की आवश्यकता

एक बार साम्यवादी विचारधारा का एक व्यक्ति महात्मा गाँधी के पास जाकर बोला—"दुनिया में इतना छल-कपट, अशांति और खून-खराबी चल रही है, फिर भी आप धर्म की बात करते हैं। बुराइयाँ और रक्तपात जितनी तेजी से बढ़ रहे हैं, उसे देखते हुए धर्म निहायत बेकार चीज है।" बापू ने कहा—"महोदय, थोड़ा सोचिए कि जब धर्म की मान्यता रहते हुए लोग इतनी अशांति फैलाए हुए हैं, तो उसके न रहने पर संसार की क्या दशा होगी ?" उस पर उन सज्जन से कोई जवाब देते न बन पड़ा।

देश की उन्नति कथनी से नहीं, करनी से

बात उन दिनों की है, जब मध्य प्रांत की राजधानी नागपुर थी। अपनी कतिपय माँगों को लेकर हरिजनों ने हड़ताल कर दी। सड़क पर कूड़े के ढेर इकट्ठे हो गए। सार्वजनिक शौचालयों में सड़ाँध आने लगी। पंडित रविशंकर शुक्ल अपने नगर की यह दयनीय स्थिति न देख सके। वे झाड़ू लेकर सफाई के लिए निकल पड़े। अकेला व्यक्ति भला क्या इतने बड़े नगर की सफाई करता। पर वह कथनी के द्वारा नहीं वरन् करनी के द्वारा यह बताना चाहते थे, कि आवश्यकता पड़ने पर हमें अपने छोटे से छोटे कार्य को करने में किसी प्रकार का संकोच न होना चाहिए।

पंडित जी को देखकर कुछ अन्य साथियों ने भी सहयोग देने का निश्चय किया। रास्ते में एक शौचालय आया, जिसमें कई दिन से मल सड़ रहा था। दुर्गंध के कारण वहाँ खड़ा होना कठिन था। पंडित जी सफाई करने के उद्देश्य से उस शौचालय में घुसे, तो उनके साथी नाक पर रूमाल रखकर अलग खड़े हो गए, पर पंडित जी ने बिना संकोच के उस शौचालय की सफाई की और मूक भाव से लोगों को यह बताया कि राष्ट्र निर्माण का कार्य कोरी बातों से नहीं होता, उसके लिए कुछ रचनात्मक कार्य भी करने होते हैं।

अधः पतन का कारण

वर्धमान महावीर के शिष्यों में चर्चा चल रही थी कि मनुष्य के अधःपतन का क्या कारण है ? किसी ने काम-वासना बताया, तो किसी ने लोभ तो किसी ने अहंकार। आखिर वे शंका-समाधान करने के लिए महावीर जी के पास आए। महावीर जी ने पूछा— "पहले यह बताओ कि मेरे पास एक अच्छा-खासा कमंडल है, जिसमें पर्याप्त मात्रा में जल समा सकता है, यदि इसे नदी में छोड़ दिया जाए तो क्या यह डूबेगा ?"

"कदापि नहीं", शिष्यों ने एक स्वर में जबाव दिया।

"और यदि उसमें एक छिद्र हो जाये तो ?"

"तब तो डूबेगा ही।"

"यदि वह दाईं ओर हो, तो ?"

"दाईं ओर हो या बाईं ओर ! छिद्र कहीं भी हो, पानी के उसमें प्रवेश करने से वह डूबने लगेगा।"

तो बस जान लो कि मानव-जीवन भी उस कमंडल के समान ही है। उसमें दुर्गुण रूपी छिद्र जहाँ हुआ, कि समझ लो वह अब डूबने वाला है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर ये सारे दुर्गुण उसे डुबाने के कारणीभूत हो सकते हैं—किसी में कोई भेद-भाव नहीं, प्रत्येक दुर्गुण अपना-अपना असर करता है। इसलिए हमें सजग रहना चाहिए कि कहीं हमारे जीवनरूपी कमंडल में कोई छिद्र तो नहीं हो रहा है ?"

अपने लिए दूसरों को दुःखी न करो !

एक बार कुछ अरब सिपाहियों ने मुहम्मद साहब का पीछा किया। उनके साथ उस समय केवल एक साथी था। वह साथी बोला, "सिपाही समीप आ गए हैं, हमें सामने के गड्ढे में छिप जाना चाहिए।" वे दोनों जब गड्ढे के पास गए, तो उस पर उन्हें मकड़ी का एक बड़ा जाला दिखाई दिया। इस पर मुहम्मद साहब बोले, "यहाँ मकड़ी का जाला है, हमें किसी दूसरी जगह जाकर छिपना होगा।" "किंतु वे लोग काफी समीप आते जा रहे हैं। हम जाले को तोड़कर छिप सकते हैं।" वह शिष्य बोला। मुहम्मद साहब बोले— "दोस्त, खुदा के वास्ते ऐसा मत करना। मकड़ी ने इस जाले को बनाने में काफी मेहनत की है, इसलिए इसे तोड़ना ठीक नहीं।" किंतु उस साथी को यह बात न जँची, वह बोला, "अपनी जान बचाने के लिए जाले को तोड़ना ही ठीक है। यह समय दया करने का नहीं है।" "तुम्हारा कहना ठीक है", मुहम्मद साहब बोले, "किंतु अपनी जान बचाने के लिए दूसरों

को दुःख देना ठीक नहीं। हम अपने नाजुक प्रसंगों में दूसरों पर दया न दिखाएँ, तो कब दिखाएँ ?" बात मित्र को जँच गई। वे दोनों उस जाले को तनिक भी धक्का न दिए उसके नीचे जा छिपे।

सिपाही जल्द ही वहाँ आये। उस खोह के ऊपर जाला देख उन्होंने सोचा, यदि वे इसमें छिपे होते तो जाला टूटा होता, अतः वे वहाँ से आगे बढ़ गए। परमेश्वर दयावान् की रक्षा इसी तरह करता है।

प्रतिदान

गौतम बुद्ध राजगृह के वेलुवन नामक स्थान में ठहरे हुए थे। एक दिन एक ब्राह्मण, जिसका कोई संबंधी बौद्ध-भिक्षु संघ में शामिल हो गया था, वहाँ आकर उनके प्रति कटु शब्द बोलने लगा। गौतम बुद्ध शांत चित्त से सुनते रहे, फिर बोले, "बंधु, तुम्हारे यहाँ कोई मेहमान तो आता होगा ?"

"हाँ, आता है", ब्राह्मण ने जवाब दिया।

"तुम उसके लिए अच्छी-अच्छी सामग्री भी बनाते होंगे ?"

"जी हाँ।"

"यदि वह उन चीजों को ग्रहण न करे तो ?"

"तो वे हमारी ही चीजें होने के कारण हम ही उन्हें ग्रहण करते हैं।"

"तो बंधु, तुमने अभी-अभी जो मुझे गालियाँ दीं, उसे मैंने भी ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि मैं कभी भी किसी से कटु वचन नहीं कहा करता। भला बताओ, वे गालियाँ तुम्हें ही मिली न ?"

यह सुन उस ब्राह्मण का सिर लज्जा से झुक गया। उसने बुद्धदेव से क्षमा माँगी और स्वयं भी उनका शिष्य हो गया।

चिता की चिंता किसे !

तिलक जी ने जब वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की, तो उनके इष्ट मित्रों ने सोचा कि तिलक जी या तो वकील बनेंगे अथवा अंग्रेज सरकार उन्हें कोई अच्छी-खासी नौकरी देगी, किंतु जब उन्होंने यह सुना कि तिलक जी ३० रुपए मासिक वेतन पर प्राथमिक शाला में बच्चों को पढ़ाया करते हैं, तो उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे तिलक जी के पास गए और बोले, "न मालूम तुम्हें क्या दुर्बुद्धि सूझी है, जो तुमने 'गुरुजी' का पेशा चुना है। आखिर तुमने 'वकीली' की परीक्षा क्या 'गुरुजी' बनने के लिए उत्तीर्ण की है ? तुम नौकरी भी करते तो तुम्हें आगे चलकर ऊँचा पद प्राप्त हुआ होता। इस पेशे में तो तुम सदा भूखों मरते रहोगे। तुम्हारी आर्थिक दशा ऐसी रहेगी कि तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् अंतिम संस्कार के लिए लकड़ियाँ तक तुम्हारे घर में न मिलेगी।"

इस पर तिलक जी ने जवाब दिया, "मित्रों ! मैं पैसे का लोभी नहीं हूँ। पैसे के लिए मुझे अंग्रेजों का गुलाम बनना कतई पसंद नहीं। रही वकीली की बात, तो मुझे यह पेशा भी पसंद नहीं। जो विद्या मनुष्य को असत्य आचरण के लिए प्रवृत्त करती है, मेरी दृष्टि में वह विद्या ही नहीं। **'सा विद्या या विमुक्तये'** (विद्या वह है, जो मुक्ति देती है)—मैं तो इसी सूक्ति को मानता हूँ और मेरे मरणोपरांत मेरी चिता के बारे में मैं क्यों चिंता करूँ ? उसके लिए नगरपालिका जो बनी हुई है। यह मेरी चिता की सामग्री जुटाएगी और मेरी चिता जलेगी।"

यह स्पष्टोक्ति सुन उन मित्रों ने इस संबंध में फिर कभी चर्चा न छेड़ी।

जय बजरंगी बली की

पंद्रह अगस्त को कारगिल की १३,५०० हजार फुट ऊँची एक पाकिस्तान चौकी पर "जय बजरंग बली" की आवाज के

साथ जमादार सीताराम सिंह ने आक्रमण किया। दुश्मन हमले के लिए तैयार था, जिसके कारण भारतीय टुकड़ी का आगे बढ़ना कोई आसान बात न थी। जमादार सीताराम सिंह ने सिपाहियों को दाएँ-बाएँ विभक्त कर उन्हें आगे बढ़ने का हुक्म दिया। पाँच मिनट तक ऐसी भीषण गोलाबारी हुई कि पहाड़ियाँ भी काँप उठीं। जमादार के शरीर को कई गोलियाँ पार गईं। सारा शरीर खून से लथपथ हो गया, पर वे बराबर आगे बढ़ते गए, दुश्मन इस कठिन मार को सह न सका। पाकिस्तानी, चौकी छोड़कर भाग खड़े हुए और कारगिल की चोटी पर भारत का तिरंगा लहरा दिया गया। जमादार साहब ने झंडे को सलामी दी और वहीं शहीद हो गए।

चार जहाज गिर गए

फ्ला० ले० डी० एन० राठौर और उनके सहायक फ्ला० आफि० बी० के० नेबहलवाड़ा हवाई अड्डे पर तैनात थे। इसी बीच पाकिस्तानी सेबर विमानों ने हवाई अड्डे पर हमला कर दिया। पहले से ही गश्त पर दो हंटर विमान उनसे टक्कर लेने लगे। पहली मुठभेड़ में एक सेबर जमीन से मार गिराया, दूसरा फ्ला० आ० गाँधी ने मार गिराया था। बाकी दो विमान हवाई अड्डे पर काफी नीचे उतरकर बमबारी करने लगे। डी० एन० राठौर और बी० के० नेब ने दोनों विमानों पर संयुक्त हमला किया और सेबर विमानों के अत्यंत समीप जाकर गोली दागनी शुरू कर दी, फलस्वरूप एक जहाज आसमान में ही जलकर टुकड़े-टुकड़े हो गया और दूसरे का एक पंख टूट जाने के कारण वह भी गिर गया और जलकर राख हो गया। बहादुर हवाबाजों ने १० मिनट से भी कम समय में दुश्मन के चार विमानों के धुर्रे उड़ा दिए।

मशीनगन पर कब्जा

मेजर मुखतारसिंह खेरा एक गश्ती टुकड़ी का नेतृत्व कर रहे थे। उन्हें एक ऐसी पहाड़ी के पास पहुँचना था, जहाँ दुश्मन की टुकड़ी पहले से ही मौजूद थी। मेजर खेरा एक सिपाही को लेकर पेट के बल घिसटते हुए शत्रु के करीब पहुँचे और पाकिस्तानी मशीनगन पर दो हथगोले फेंके। पर मशीनगन बच गई, इधर उन पर चारों ओर से दुश्मन की गोलियाँ बरसने लगीं। यह मशीनगन भारतीय जवानों का आगे बढ़ना रोक रही थी, अतः उसे नष्ट करना आवश्यक था। मेजर खैरा अपने साथी समेत गोलियों की परवाह किए बिना मशीनगन पर टूट पड़े और पाकिस्तानियों को मारकर मशीनगन पर कब्जा कर लिया। इधर मशीनगन का मुँह पाकिस्तानियों की ओर मुड़ा, उधर भारतीय कुमुक आगे बढ़ गई।

अनोखी सूझ-बूझ

आगरा निवासी एक विमान चालक को, जिसकी उम्र अभी कुल २५ वर्ष होगी, सरगोधा हवाई अड्डे पर आक्रमण करने का आदेश मिला। साथ में तीन और विमान थे। सफल गोलाबारी के बाद चारों विमान भारतीय सीमा पर लौट आए, किंतु इस चालक को सूझा कि अभी उसके पास दो बम हैं, इनका उपयोग क्यों न किया जाए ? साथियों के विवाद के बावजूद वह फिर वापस लौटा, किंतु पीछा करने वाले शत्रु के विमानों ने उसे घेर लिया और हवाई अड्डे पर उतरने के लिए बाध्य कर दिया। उसने अपना विमान उतारा, किंतु वह अभी हवाई पट्टी को छू ही रहा था कि उसने सहसा विमान को तेजी से ऊपर उठा दिया और एक बम पीछा करने वाले जहाज पर छोड़ा, जो तत्काल नष्ट हो गया। दूसरा बम जमीन पर खड़े विमान के पास फटा और वह भी नष्ट हो गया। भारतीय चालक सकुशल अपनी सीमा पर लौट आया।

हवलदार जस्सासिंह फजिल्का के पास युद्ध कर रहे थे। भीषण गोलाबारी में उनकी सारी कारतूसें समाप्त हो गई। इस बीच पाकिस्तानियों से मुठभेड़ की लड़ाई शुरू हो गई। हवलदार जस्सासिंह ने छह पाकिस्तानियों को बंदूक के कुंदे से ही मार डाला। अभी दो और भी थे और बंदूक टूट गई, इस पर जस्सासिंह ने कारतूसों के खाली बक्सों से उन पर प्रहार किया और उन्हें भी मार दिया।

आठ के मुकाबले में अकेला

जवान शिंगारसिंह को बाड़मेर जिले में आठ पाकिस्तानी घुसपैठियों ने घेर लिया, पर उसने हिम्मत न हारी। चार को गोलाबारी में मार दिया और शेष दो को घायल कर दिया। दो बाकी बचे, सो भाग गए। शिंगारसिंह को काफी घाव लगे थे, पर बाद में उन्हें अस्पताल में काफी देखभाल के बाद बचा लिया गया।

चौकी छीन ली

राजा की चौकी पर पाक अधिकृत कश्मीर की दो पुलिस प्लाटूनों तथा पठान सैनिकों ने कब्जा कर रखा था। इनके पास सुरक्षा के लिए मशीनगनें तथा मोटारें भी थे, इसके अतिरिक्त पूरे इलाके में बारूदी सुरंगें भी बिछा रखी थीं। ले० कर्नल खन्ना को इस चौकी पर अधिकार करने का आदेश हुआ। ८ सितंबर को प्रातःकाल हमारी बटालियन ने राजा की चौकी पर धावा बोला। जैसे ही हमारे जवान आगे बढ़े कि दुश्मन की मोर्टारें आग उगलने लगीं। हमारे काफी जवान मारे गए और कुछ देर के लिए आगे बढ़ना रुक-सा गया। ले० कर्नल अकेले आगे बढ़े तो जवानों में भी अपूर्व जोश फूट पड़ा, वे भी हथगोले लेकर पीछे चल पड़े और दुश्मन से २० गज की दूरी पर पहुँच गए। इस बीच उन्हें दाहिने कंधे और बांयी बाह में कई बड़े घाव लगे, पर वे जवानों को बराबर ललकारते ही रहे। इधर जवानों

ने चौकी दुश्मनों के हाथ से छीनी, उधर खन्ना के प्राण पखेरू उड़ गए।

टैंकों का दुश्मन

उड़ी-पुंछ क्षेत्र का एक सैनिक अफसर टैंक विध्वंसक के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। पाकिस्तान के टैंक अजेय और अभेद्य माने जाते थे। टैंकों के आक्रमण को रोकना बड़ा कठिन था। इस अफसर ने उसे भी आसान करके साहसपूर्वक दुश्मन के ६ टैंकों को हथगोलों से तबाह किया। अंत में घायल अवस्था में उसे पीछे लाया गया।

मृत्युंजयी मेजर गिरीशचंद्र वर्मा

डोगरा रेजिमेंट के मेजर गिरीशचंद्र वर्मा ने ६ सितंबर को पुंछ क्षेत्र में दुश्मन की एक बहुत सुदृढ़ चौकी जीतने वाली सैनिक टुकड़ी का नेतृत्व जिस वीरता और साहस के साथ किया, वह भारतीय इतिहास में बहुत काल तक अविस्मरणीय रहेगा।

प्राप्त विवरण के अनुसार मेजर वर्मा को शत्रु की इस चौकी पर अधिकार करने का काम सौंपा गया था। शत्रु बहुत कम दूरी पर भारी मोर्चा जमाए हुए था तथा स्वचालित शस्त्रास्त्रों से धुआंधार गोली वर्षा कर रहा था। मेजर वर्मा ने बड़ी कठिनाई से अपनी कंपनी को आक्रमण करने के लिए तैयार किया। आक्रमण में शत्रु ने हमारी कंपनी पर सीधे प्रहार किए, जिसमें कुछ जवान मारे गए। इससे जवान कुछ ठिठक गए, परंतु मेजर वर्मा ने सबसे आगे बढ़कर व्यक्तिगत रूप से आक्रमण का नेतृत्व किया। मेजर वर्मा की कंपनी के जाँबाज जवान भी मौत की परवाह न कर आगे बढ़े। गोलियों की कर्णभेदी आवाज में भी मेजर वर्मा का जयघोष और जवानों के लिए आह्वान गूँजता रहा।

जब चौकी पर अधिकार करने का लक्ष्य बहुत निकट आ गया, तब मेजर वर्मा के सिर पर गोली लगी और वे गिर पड़े, परंतु उनके जवान इससे हतोत्साहित नहीं हुए और उन्होंने दुगने उत्साह से हमला कर शत्रु को भगाकर चौकी पर अधिकार कर लिया। मेजर वर्मा को विजय की सूचना दी गई। उन्होंने मरते समय इतना ही कहा—"मुझे गर्व है कि मेरा लक्ष्य पूरा हो गया।"

यह लड़ाई कितनी भयानक थी, इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि भारतीय कंपनी के ६० प्रतिशत जवान इस युद्ध में खेत रहे।

न्यायप्रियता

बात १९२७ की है। उस समय सरदार वल्लभभाई पटेल खेड़ा और नागपुर के सत्याग्रह आंदोलन का सफल नेतृत्व करने के बाद अहमदाबाद नगरपालिका के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे थे।

उसी समय नगरपालिका में मुख्याधिकारी का पद रिक्त हुआ और उसके लिए तीन प्रत्याशी साक्षात्कार के लिए बुलाए गए। उनमें से एक श्री मोरारजी देसाई भी थे।

इंटरव्यू में प्रत्याशियों को स्वयं सरदार पटेल ने ही सबसे अधिक जाँचा और मोरारजी को सबसे अधिक योग्य पाया। निदान, उन्हीं की नियुक्ति का निश्चय किया, किंतु मोरारजी विरोधी दल के प्रत्याशी थे। सरदार के सत्ताधारी दल ने मोरारजी का विरोध किया और अपने पक्ष के एक अन्य प्रत्याशी को नियुक्त कर दिया।

सरदार पटेल अपने ही दल का यह अन्याय सहन न कर सके और उन्होंने नगरपालिका के अध्यक्ष पद से यह कहकर त्यागपत्र दे दिया कि न्याय के दायरे में मैं पक्षपात की दृष्टि से नहीं देख सकता।

उदार विश्वास

सरदार वल्लभभाई पटेल की न्यायप्रियता तथा दृढ़ चरित्रनिष्ठा देखकर मोरारजी देसाई सरकारी नौकरी छोड़कर उनकी अध्यक्षता में गुजरात कांग्रेस के मंत्री पद पर काम करने लगे।

यद्यपि सरदार गुजरात कांग्रेस के अध्यक्ष थे, किंतु सारे देश का उत्तरदायित्व उनके कंधों पर रहा करता था। इसलिए गुजरात कांग्रेस का काम देखने के लिए पर्याप्त समय न मिल पाता था। अतएव उन्होंने सारा काम मोरारजी पर ही छोड़ दिया।

समय-समय पर परामर्श के साथ वे मोरारजी के काम की सराहना करते और प्रोत्साहन देते। सरदार के विश्वास ने मोरारजी को इतना उत्तरदायी बना दिया कि वे मंत्री पद पर होते हुए भी अध्यक्ष के अधिकारों तक पहुँच गए।

सरदार पटेल के कतिपय साथियों ने उनसे कहा कि आपको अपने मंत्री पर इतना विश्वास नहीं करना चाहिए। इससे वह उत्साहित होकर आपका अध्यक्ष पद पाने का प्रयत्न करने लगेगा।

सरदार पटेल ने उत्तर दिया कि सच्चा विश्वास किसी को विश्वासघात के लिए प्रेरित नहीं कर सकता और फिर मुझे अध्यक्ष पद से कोई मोह नहीं है। मुझे देश की सेवा करनी है, वह मैं उससे अलग रहकर भी कर सकता हूँ। देश की प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करना तथा उन्हें बढ़ने का अवसर देना, हम लोगों का एक राष्ट्रीय कर्तव्य ही है।

परदुःख-कातरता

घटना सन् १९३५ की है। सरदार वल्लभ भाई पटेल एक लंबी सजा काटकर कारावास से लौटे ही थे। उनका स्वास्थ्य बहुत

खराब हो गया था और नाक में बेहद पीड़ा हो रही थी। चिकित्सकों ने तुरंत आपरेशन का परामर्श दिया और उसकी तैयारी होने लगी।

तभी उन्हें बोरसद में फैली महामारी की सूचना मिली और यह भी पता चला कि सरकार कोई ध्यान नहीं दे रही है और लोग बुरी तरह मौत के मुँह में जा रहे हैं। बस फिर क्या था, सरदार अपनी पीड़ा भूल गए और बोरसद की ओर दौड़ पड़े। शल्य क्रिया के सारे उपक्रम जहाँ के तहाँ रह गए।

साथियों, शुभ चिंतकों और श्रद्धालुओं ने उन्हें वैसी दशा में महामारी-क्षेत्र में न जाने के लिए सलाह दी और अनुरोध किया, किंतु परदुःख कातर सरदार भला कब रुकने वाले थे। वे यह कहते हुए चले ही गए कि मरती हुई मानवता की उपेक्षा करके जो अपनी परवाह में लगा रहता है, उससे बड़ा कायर दुनिया में दूसरा नहीं और मैं कायर नहीं हूँ।

निर्भीकता

बोरसद में भयानक प्लेग फैली हुई थी और सरदार वल्लभ भाई पटेल मानवता की रक्षा में उससे जूझ रहे थे। यद्यपि उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, तब भी रात-दिन एक कर रहे थे।

सफाई का कार्यक्रम चल रहा था। सैकड़ों स्वयंसेवक क्षेत्र की सफाई में जुटे हुए थे। सरदार ने सारे स्वयंसेवकों को प्लेग के टीके लगवा दिए, किंतु जब उनसे टीका लगवाने को कहा गया, तो उन्होंने कहा कि मैं मौत के डर से टीका नहीं लगवाऊँगा। मुझे अपने देशवासियों की सेवा में मरने में जीने से अधिक सुख होगा। जो एक टीका मुझे दिया जाने वाला है, वह किसी एक पीड़ित के काम आएगा।

सरदार ने टीका नहीं लगवाया और वैसे ही काम करते रहे। वे स्वयंसेवकों को तो बाहरी सफाई में लगाते थे, किंतु रोगियों के घरों और शरीरों की सफाई स्वयं करते थे।

लोगों ने उन्हें इस प्रकार खतरा मोल न लेने के लिए कहा तो उन्होंने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—"जो किसी अच्छे काम में मरना चाहता है, मृत्यु उससे जल्दी बोलती नहीं।"

सरदार की डाँट

सरदार पटेल उन दिनों कारावास में थे। बात सन् चालीस-इकतालीस की है। कुछ शारीरिक कारणों से उन्हें ठंडे पानी से नहाना मना था। डॉक्टरों ने गर्म पानी से ही स्नान करने की हिदायत कर रखी थी। जेल में भी उन्हें गर्म पानी की अनुमति और जेलर को हिदायत दे दी गई थी।

किंतु जेलर बड़ा ही दुष्ट और काइयां किस्म का आदमी था। वह सरदार को गर्म पानी भिजवाने में आनाकानी किया करता था। कुछ दिन तो सरदार जी उसे समझाने और राह रास्ता पर लाने का प्रयत्न करते रहे, किंतु जब वह अपनी दुष्टता से बाज न आया तो एक दिन उन्होंने जेलर को रोककर कहा—"महाशय, या तो आप ठीक समय पर नित्य ही मेरे नहाने का पानी गरम करा दिया करें, अन्यथा मैं आपका सारा फर्नीचर तोड़कर पानी गरम करने के लिए जला डालूँगा और तब फिर आपको मेरी शिकायत करने की तकलीफ करनी पड़ेगी।"

जेलर उनकी बात सुनकर स्थिति समझ गया और पानी गरम कराने लगा।

भविष्यद्रष्टा

पाकिस्तानियों की नब्ज की पहचान सरदार पटेल से अधिक किसी को नहीं थी। वे उसकी एक-एक चाल और मक्कार मनोवृत्ति से पूरी तरह परिचित थे।

आज पाकिस्तान कश्मीर में जो जनमत संग्रह की माँग को जोर-शोर के साथ संसार के सामने रख रहा है—सरदार पटेल ने इस स्थिति को बहुत पहले भाँप लिया था। इसीलिए उन्होंने आबादी की अदला-बदली के समय पंजाब और सीमांत से आए

शरणार्थियों को कश्मीर में बसाने पर जोर दिया था, किंतु उनकी बात को कतिपय हठी राजनेताओं ने तब कोई महत्त्व न दिया।

यदि उस समय सरदार पटेल की बात मान ली जाती, तो आज पाकिस्तान कश्मीर में जनमत संग्रह के लिए न तो इतनी उछल-कूद मचाता और न कश्मीर की तरफ आँख उठाने की हिम्मत करता। सरदार पटेल के व्यापक दृष्टिकोण की भारत को क्या आज आवश्यकता नहीं है ?

निर्भीक नीति

भारत संघ में विलय के प्रश्न पर हैदराबाद ने बड़ी उछल-कूद मचाई। पहले तो सरदार ने नवाब को काफी समझाया और देश के हित का रास्ता दिखाया, पर नवाब साहब का दिमाग सातवें आसमान पर था। वे तो कासिम रिजवी के बलबूते अपना आसफजाही झंडा दिल्ली के लाल किले पर फहराने का ख्वाब देख रहे थे।

आखिर लौह पुरुष पटेल ने पुलिस कार्यवाही का आदेश दे दिया। दो दिन नहीं गुजरे और नवाब साहब का ताजो-तख्त भारत माता के पैरों पर पड़ा दिखाई दिया। ऐसे थे अपने सरदार पटेल और ऐसी थी उनकी निर्भीक नीति।

मनुष्यता के रक्षक

कलकत्ता में स्वामी रामकृष्ण मठ की स्थापना हो चुकी थी। उनके सारे भक्त संन्यास लेकर मठ में प्रवेश कर चुके थे। मठ का सारा काम मठ में लगी जमीन से चलता था।

तभी कलकत्ते में प्लेग का प्रकोप हुआ। लोग बुरी तरह मरने और बीमार होने लगे। स्वामी विवेकानंद जी से यह न देखा गया और उन्होंने मठ को सुश्रूषा शिविर में बदल दिया। सारे अध्यात्म साधकों को सेवा कार्यों में लगा दिया और कहा—"आज भगवान् ने अपने सच्चे भक्तों और सच्चे

संन्यासियों की परीक्षा ली है। आज मनुष्यता और महामारी के बीच संग्राम छिड़ गया है। आज मठ के प्रत्येक संन्यासी को अपनी सच्चाई का प्रमाण देना है। ऐसी सेवा करो, इतनी परिचर्या करो, इतनी सहानुभूति बरसाओ कि मठ में आया हुआ कोई भी रोगी मृत्यु से पराजित न होने पाये। धन की कमी होने पर मठ की भूमि बेच दूँगा, चिंता न करना।

स्वामीजी की प्रभावोत्पादक पुकार पर संन्यासी जीवन के देवदूतों की भाँति रोगियों की सेवा में जुट गए।

अनंत उदारता

बालक विवेकानंद की माता उनकी अनंत उदारता से तब जरूर कुछ परेशान हो उठीं, जब घर की कोई भी वस्तु अदेय नहीं रही और भिखारियों को पैसा न होने पर बासन-वसन दिए जाने लगे और भिखारी ! उन्होंने तो दाता का द्वार देख ही लिया था।

एक दिन शरीर के वस्त्र उतारकर दे देने पर माँ ने विवेकानंद को ऊपर कमरे में नंगा ही बंद करके बाहर से कुंडी लगा दी, विवेकानंद खिड़की के पास खड़ा सड़क पर देख रहा था। एक भिखारी ने दाता को पहचाना और आवाज लगाई। विवेकानंद ने उसे रोक तो लिया, पर कमरे में देने को कुछ था ही नहीं। चेहरे पर उदासी आई ही थी, कि देखा माँ का एक बक्स बिना ताले के रखा था। बस फिर क्या था, अर्थी और परमार्थी दोनों का काम बन गया।

विवेकानंद ने दो बेशकीमती साड़ियाँ निकालीं और खिड़की के रास्ते भिखारी के फैले हुए हाथों पर फेंक दीं।

भिखारी का आशीर्वाद सुनकर माँ आई और देखा कि दाता प्रसन्न था और भिखारी निहाल ! माँ अपने उपाय की असफलता पर हँसती हुई बोली—"तू संसार को सर्वस्व दिए बिना न मानेगा।"

बिगड़े हुए को क्या बनाएगा

बालक विवेकानंद माता-पिता का बड़ा लाड़ला बेटा था। किसी शैतानी पर डांटा न जाता, बल्कि बड़े प्यार से समझाया ही जाता था।

एक बार किसी बात पर माँ ने डाँट दिया, बस फिर क्या था विवेकानंद का उपद्रव तोड़-फोड़ में बदल गया। तमाम चीजें फेंकने फैलाने और तोड़ने-फोड़ने लगा।

माँ ने तत्काल अपनी भूल सुधारी और विवेकानंद की प्रवृत्ति के अनुकूल मीठे स्वर में बोलीं—"बिले, जब तू बने हुए को बिगाड़ता है, तो बिगड़े हुए को क्या बनाएगा ?"

बालक का उत्पात तत्काल बंद हो गया और मुख पर लज्जा का भाव लिए हुए सारी चीजें समेट सँजोकर रखने लगा।

विचित्र जिज्ञासा

बालक विवेकानंद के पिता बड़े सामाजिक आदमी थे। उनसे हर धर्म और हर जाति के मित्र मिलने आया करते थे। उन्होंने सबके लिए अलग-अलग हुक्के बनवाकर बैठक में रखवा रखे थे।

एक दिन पूछने पर उसे बताया गया कि यदि एक व्यक्ति दूसरे का हुक्का पी लेगा, तो उसकी जाति चली जाएगी, इसीलिए सबके लिए अलग-अलग हुक्कों का प्रबंध कर रखा है।

पिता जब लौटकर बैठक में आए तो देखा कि बालक मसनद पर बैठा हुक्का पी रहा है। पिता ने छी-छी करते हुए कहा—"यह क्या कर रहा है, बिले।"

विवेकानंद ने तत्काल उत्तर दिया—"मैं यह देख रहा हूँ पिताजी, कि किसी एक का हुक्का पीने से दूसरे की जाति कैसे चली जाती है ?"

पिता को कुछ कहते न बना और वे हँसते हुए बिले को साथ लेकर चल दिए।

धन नहीं ज्ञान चाहिए

स्वामी विवेकानंद के पिता ने जिस बहुतायत से धन कमाया, उससे अधिक तत्परता से उसे खर्च भी कर डाला। निदान, जब उनका स्वर्गवास हुआ, तब परिवार के गुजारे के लाले पड़ गए।

स्वामी विवेकानंद उस समय बी० ए० पास कर चुके थे, किंतु दुर्दैववश बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें कोई नौकरी न मिल सकी। उनकी माँ और छोटे भाई-बहनों को भूखे रहने की नौबत आ गई।

स्वामी विवेकानंद परेशान होकर अपने गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस के पास गए और अपनी व्यथा सुनाई। श्री रामकृष्ण ने उनसे कहा—"आज तुम काली माता से जो कुछ माँगोगे वह सब मिल जाएगा, जाओ माँग लो जाकर।"

स्वामी विवेकानंद आधी रात के बाद माता के मंदिर में गए, किंतु हाथ जोड़कर प्रार्थना के लिए खड़े होते ही वे अपने लौकिक स्वार्थ को भूल गए, और माँगने लगे—"माँ ! मैं और कुछ नहीं चाहता, मुझे केवल ज्ञान दे, भक्ति दे, विवेक दे और वैराग्य दे।"

श्री रामकृष्ण ने उन्हें तीन बार माँ के पास भेजा, किंतु वे एक बार भी रुपया-पैसा न माँग सके।

लोक-सेवा का महत्त्व

काशीपुर के उद्यान गृह में जिस समय वे अपने गुरु की अंतिम परिचर्या कर रहे थे, स्वामी विवेकानंद को गुरु की कृपा से ईश्वरीय दर्शन के साथ तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया।

आलोक प्राप्त होते ही स्वामी विवेकानंद के मन में विचार आया, कि बस अब मैं सारा संसार त्यागकर एकमात्र समाधिस्थ होकर, परमानंद का अनुभव करता हुआ संपूर्ण जीवन बिताऊँगा।

अंतर्यामी गुरु ने यह बात जान ली और बोले—"विवेक ! तुम्हारा यह स्वार्थ पूर्ण परमार्थ उचित नहीं। अभी तुम्हें छुट्टी नहीं है। संसार से अज्ञान दूर करने का बहुत बड़ा काम तुम्हें करना है। एकांत में बैठकर आत्म-सुख का आनंद तुम्हें नहीं लेना है।

संसार में कोई प्रयोजन न रहने पर भी स्वामी विवेकानंद ने गुरु आज्ञा को शिरोधार्य किया और ब्रह्मानंद में लीन होकर बैठ जाने की बजाय लोक-सेवा में लग गए।

पता-
गायत्री तीर्थ शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार
(उत्तराञ्चल) २४९४११
फोन-०१३३४-२६०४०२, २६११२८ फैक्स-२६०८६६
E-mail : Shail@del2.vsnl.net.in
Website: www.gayatripariwar.org